आदौ मङ्गलाचरणम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ वन्दे शैलसुतापतिम्भयहरं मोक्षप्रदं प्राणिनां मोहध्वान्तसमूहभञ्जनविधौ प्राभास्करं चान्वहम् । यद्बोधोदयमात्रतः प्रविलयं विघ्नस्य शैलव्रजा यान्त्येवाखिल सिद्धयः प्रतिदिनं चाद्यन्तहीनं परम् ॥ १ ॥

यन्ध्यायन्ति मुनीश्वराः प्रतिदिनं संयम्य सर्वेन्द्रियाण्य र्वाक्तीर्थजलाभिषिक्तशिरसो नित्यक्रियानिर्वृताः । षट्चक्रादि विचारसारकुशला नन्दन्ति योगीश्वराः तं वन्दे परमात्मरूपम नघं विश्वेश्वरं ज्ञानदम् ॥ २ ॥

दो० करों वन्दना ब्रह्मको, जो अनन्त निजरूप ।
जेहिजाने जगभ्रमसकल, मिटै अन्ध तमकूप ॥
नाम रूप जामें नहीं, नहीं जाति अरु भेद ।
सो मैं पूरण ब्रह्म हूं, रहित त्रिविध परिछेद ॥
ब्रह्मभाग जो उपनिषद्, ताका करूं विचार ।
भाषा में तिस अर्थ को, लखै सकल संसार ॥
सन्त संग से जो लख्यो, सो मैं करूं बखान ।
परमानन्द सहाय ते, जाने सकल जहान ॥
पुरी अयोध्या के निकट, अकबरपुर है गांव ।
जन्मभूमि मम जान तू, जालिमसिंहहि नांव ॥

यह संसार असार महाअपार समुद्र है, इसके पार होनेके लिये उपनिषत् अद्भुत अलौकिक अद्वितीय नौका है, जिसमें बैठकर असंख्य सज्जन मुमुक्षुजन बिना प्रयासही ऐसे दुस्तर सागर के पार होगये हैं, और होतेजाते हैं, और भविष्यत्काल में होंगे, जो मुमुक्षुजन हैं, उनके हितार्थ यह भाषाटीका रची गई है, इस टीका में पहिले मूल मन्त्र है, फिर पदच्छेद है, फिर वामहस्त की ओर संस्कृत अन्वय दिया है, और दक्षिण हस्त

की ओर पदार्थसहित भाषार्थ लिखा है, यदि वाम तरफ का लिखा हुआ ऊपर से नीचे तक पढ़ाजावे तो उत्तम संस्कृत मिलेगा और यदि दक्षिण हस्त के तरफवाला पढ़ाजावे तो पूरा अर्थ मन्त्र का मध्यदेशीय भाषा में मिलेगा, और यदि बायें तरफ से दहिने तरफ को पढ़ाजावे तो हर एक संस्कृत पदका अर्थ भाषा में मिलेगा, जहांतक होसका है, प्रत्येक संस्कृतपदका अर्थ विभक्ति के अनुसार लिखागया है, इस टीका के पढ़ने से संस्कृत विद्या का भी अभ्यास होगा, इस टीका में मूल का कोई शब्द छूटने नहीं पाया है, और मन्त्र का पूरा २ अर्थ उसी के शब्दोंहीं से सिद्ध कियागया है, अपनी कल्पना कुछ नहीं कीगई है, हां कहीं कहीं ऊपर से संस्कृतपद मन्त्र के अर्थ स्पष्ट करनेके लिये रखागया है, और उस पदके प्रथम यह+ चिह्न लगादियागया है ताकि पाठकजनों को विदित होजावे कि यह पद मूल का नहीं है, इस टीका को बाबू ज़ालिमसिंह निवासी ग्राम अकबरपुर ज़िला फ़ैज़ाबाद पोस्टमास्टर जनरल ग्वालियर, सहित अत्यन्त सहायता पण्डित गङ्गादत्त ज्योतिर्विद् निवासी मुरादाबादाभिधपत्तन और पण्डित रामदत्त ज्योतिर्विद् निवासी अल्मोड़ाख्य नगर के रचकर शुद्ध निर्मल हृदयाकाशवान् पुरुषों के चरणकमल में अर्पण करता है, और आशा रखता है कि जहां कहीं अशुद्धता हो उस से टीकाकर्ता को सूचना करें, ताकि अशुद्धता दूर होजावे ॥

ऐतरेयोपनिषद् सटीक ॥

मूलम् ।

ॐ आत्मावाइदमेकएवाग्रआसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत्सईक्षतलोकान्नुसृजाइति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

आत्मा वै इदम् एकः एव अग्रे आसीत् न अन्यत् किञ्चन मिषत् सः ईक्षत लोकान् नु सृजे इति ॥ १ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
वै=	निश्चय करके
इदम्=	यह नामरूपात्मक
जगत=	जगत्
एकः=	एक
आत्मा=	आत्मा
एव=	ही
अग्रे=	सृष्टि से पूर्व
आसीत्=	विद्यमान था
च=	और
अन्यत्=	आत्मासेइतर
मिषत्=	चैतन्य
किञ्चन=	कुछ
न=	नहीं था
नु=	और
लोकान्=	लोकों को यानी पञ्चभूतों को
सृजै=	मैं सृजूं
इति=	ऐसा
सः=	वह आत्मा
ईक्षत=	विचार करता भया ॥

भावार्थः ।

यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्तिविषयानिह ।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्तितः ॥ १ ॥

जो संपूर्ण शरीरों में व्यापक होकरके रहै, और जो उपाधि-विशिष्ट होकर पदार्थों को ग्रहण करै, और जो विषयों को भोगै, और जिस का निरंतर भाव बनारहै, उसी का नाम आत्मा है, ऐसा स्मृति ने आत्मा का लक्षण किया है, सो यह आत्मा दो प्रकार का है, एक तो व्यवहारविशिष्ट है, जिसको जीवात्मा भी कहते हैं, दूसरा व्यवहार से रहित है, जिसका नाम परब्रह्म है, व्यवहार तीन प्रकार का है, जाग्रत् का व्यवहार, स्वप्न का व्यवहार, सुषुप्ति का व्यवहार, सुषुप्ति में यह जीव अपनी उपाधि से रहित होकर परमानंदरूप ब्रह्म आत्मा को प्राप्त होजाता है, इसलिये जीव को भी आत्मा कहा है, यह लक्षण व्यवहारविशिष्ट आत्मा का स्मृति ने किया है, कैवल्योपनिषद् की श्रुति भी इसी अर्थ को कहती है ॥ सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति ॥ १ ॥ सुषुप्ति कालमें जाग्रत् और स्वप्न के व्यवहारका विशेष ज्ञान लीन होजाता है, और अज्ञानकर के आच्छादित हुवा २ यह जीव आनंदरूप आत्मा को प्राप्त होजाता है, और सुख को अनुभव करता है, इसी कारण इस जीव का नाम आत्मा है, और स्वप्नअवस्था में यह जीव जाग्रत्के छे पदार्थोंकी वासनाको लिये रहता है, और अनेक प्रकार का व्यवहार करता है, इस वास्ते भी इसका नाम आत्मा है, और जाग्रत्अवस्था में बाह्य चक्षुरादि इन्द्रियों करके भोगों को भोगता है, इस वास्ते भी इस का नाम आत्मा है, पूर्वोक्त युक्तियों से अन्तःकरणरूप उपाधि विशिष्टआत्मा का नामही जीव है, अब केवल आत्म शब्द के अर्थ को दिखाते हैं, आत्मा का स्वरूप त्रिविध परिच्छेदरहित है, इसी से वह सर्वत्र गमनकर्ता आत्मा कहाजाता है, जो वस्तु परिच्छेदवाली

होती है वह सर्वत्र गमन नहीं करसक्ती है जैसे घट पटादिक पदार्थ परिच्छेदवाले हैं, इसी से वह सर्वत्र नहीं हैं, जो वस्तु एक देशमें हो और एक देश में न हो, वह वस्तु देश परिच्छेद वाली कहीजाती है, जैसे घटादिक, और जो एक वस्तु में हो पर दूसरे में न हो वह वस्तु वस्तुपरिच्छेदवाली कही जाती है, जैसे नील पीतादिक वर्ण, नीलवर्ण श्वेत में नहीं है, और श्वेतवर्ण नील में नहीं, जो एक काल में हो पर दूसरे काल में न हो वह वस्तु कालपरिच्छेदवाली कहीजाती है, जैसे स्थूलशरीर, सो ऐसा आत्मा नहीं है, यह देश काल वस्तुपरिच्छेद से रहित है, इसी वास्ते वह सर्वत्र गमनकर्ता है, अर्थात् सर्वत्र व्यापक है, और जो व्यापक है, वह नित्य भी है, ज्ञानस्वरूप है, और आनंदस्वरूप भी है, इसी वास्ते वह केवल ब्रह्मात्मा कहा जाता है ॥ उसी केवल आत्मा को इस ऐतरेयोपनिषद् में निरूपण करते हैं ॥ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्य त्किंचनमिषत् ॥ यह जो दृश्यमान जगत् है, इस की उत्पत्ति से पहले त्रिविध परिच्छेद से रहित एक आत्माही केवल था, आत्मा से विलक्षण और कोई भी वस्तु न थी, तीन प्रकार का परिच्छेद वा भेद होता है, सजातीय १, विजातीय २, स्वगत ३, इन को दृष्टांत में घटाकर दिखाते हैं, जैसे एक वृक्ष में उसी जातिवाले वृक्षांतरों का भेद रहता है, याने वह अपने समान जातिवाले वृक्षों से भिन्न है, और फिर उसी वृक्ष में अपने से भिन्न और जातिवाले पाषाणादिकों का भी भेद रहता है, क्योंकि उन से भी वह भिन्न है जैसे एक पीपल के वृक्ष में तज्जातिवाले दूसरे पीपल के वृक्षों का भेद रहता है, और भिन्न जातिवाले आम्रादिक पदोंका भी भेद है, क्योंकि उन दोनों से वह भिन्न है, फिर उसी पीपल के वृक्ष में स्वगत भेद भी रहता है, अर्थात् अपनी ही बड़ी छोटी शाखों का और पत्तोंका भेद रहता है, अपने में प्राप्त हुये का जो अपने से

भेद है, उसी का नाम स्वगत भेद है, जैसे आमवृक्ष औ उसी में प्राप्त हुई उस की शाखा का भेद है, सो आत्मा ऐसा नहीं है, क्योंकि यदि कोई दूसरा आत्मा उस के समान जातिवाला होवै, तब तो उस से सजातीय भेद रहै, सो ऐसा तो नहीं है, क्योंकि निराकार निरवयव व्यापक एकही होता है, इस वास्ते सजातीय भेद से वह रहित था, और विजातीय भी कोई उस का उत्पन्न नहीं हुवा, इसलिये विजातीय भेद से भी वह रहित था, और निरवयव होने के कारण वह स्वगत भेद से भी रहित था, क्योंकि स्वगत भेद सावयव पदार्थों में हीं रहता है, इसलिये त्रिविध भेद से रहित एक अद्वितीय आत्मा जगत् की उत्पत्ति से पूर्व था॥ वही परमात्मा ईश्वर जगत् की उत्पत्ति से पूर्व प्राणियों को उन के कर्मों के फल भोगाने के लिये पृथिवी आदिक लोकों के उत्पन्न करने की इच्छा को करताभया ॥ १ ॥

मूलम् ।

सइमाँल्लोकानसृजताम्भोमरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेणदिवन्द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षंमरीचयःपृथिवीमरोया अधस्तात्ताआपः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः इमान् लोकान् असृजत अम्भः मरीचीः मरम् आपः अदः अम्भः परेण दिवम् द्यौः प्रतिष्ठा अन्तरिक्षम् मरीचयः पृथिवी मरः याः अधस्तात् ताः आपः ॥ २ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
सः =	वह आत्मा	अम्भः =	अम्भलोक हैं
इमान् =	इन	अन्तरिक्षं =	अन्तरिक्षलोक यानी वह लोक जो पृथिवीसे ऊपर और स्वर्गसे नीचे है सो
लोकान् =	लोकोंकोयानी		
अम्भः =	महदादिलोकोंको		
मरीचीः =	अन्तरिक्षलोकोंको		
मरम् =	पृथिवीलोकको	मरीचयः =	मरीचिलोक हैं
+च =	और	पृथिवी =	भूलोक
आपः =	पृथिवी से अधोलोकोंको	मरः =	मरलोक है मरणधर्मीहोनेसे
असृजत =	सृजताभया	+ च =	और
द्यौःप्रतिष्ठा =	स्वर्गहैआश्रय जिसका ऐसे	याः =	जो लोक
दिवंपरेण =	देवलोकसे परे	अधस्तात् =	पृथिवी से नीचे हैं
अदः =	ये महदादि लोक	ताः =	वे
		आपः =	आपःशब्द से प्रसिद्ध हैं

भावार्थः ।

सइति ॥ सो परमात्मा परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति से पूर्व प्रथम जगत् के रचने का विचार करताभया, (प्र०) बिना उपादान कारण के कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है, ऐसा नियम है तब फिर अकेला परमेश्वर इस जड़ जगत् की उत्पत्ति को कौन से उपादानकारण से करताभया, केवल निरवयव चेतन से तो

जड़ जगत् सावयव की उत्पत्ति बनती नहीं, (उ०) केवल चेतन से जड़ जगत् की उत्पत्ति नहीं बनती है, इस बात को तो हम भी मानते हैं, केवल चेतन को ब्रह्म चेतन करके हम मानते हैं, और मायाविशिष्ट चेतन को हम ईश्वर करके मानते हैं, उसी ईश्वर में जगत् के उत्पन्न करने की इच्छा होती है, केवल शुद्ध ब्रह्म चेतन में फुरनारूपी इच्छा नहीं होती है, माया जड़ है, और ईश्वर का शरीर है, ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है, इसलिये तिसका शरीर माया भी सर्वत्र विद्यमान है, ईश्वर में प्रथम फुरना होतीभई, और उसी में जगत् भी उत्पन्न होकर स्थिर होता भया, और उसी ईश्वर में प्रलयकाल में जगत् लयभाव को प्राप्त होजाता है, जैसे जीव के स्वप्न अवस्था में जितने हस्ति घोड़े आदिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब जीवकी फुरना से जीव के शरीर के अंदरही उत्पन्न होतेहैं, और फिर जीव के शरीर के अंदरही लय भी होजाते हैं, तैसेही व्यापक ईश्वर का व्यापक शरीररूपी माया के भीतरही सब जगत् उत्पन्न भी होता है, और लयभाव को भी प्राप्त हो जाता है, जड़भाग माया का जड़ जगत् का उपादानकारण है, और चेतनभाग निमित्तकारण है, जड़ चेतन उभयभाग निमित्तोपादानकारण हैं, इसलिये वेदांतसिद्धांत में ईश्वरही जगत् का अभिन्ननिमित्त उपादानकारण माना है, इस हेतु से जड़ जगत् के रचने की इच्छा भी तिसमेंही बनजाती है, इसमें कोई दोष नहीं आताहै, मायाविशिष्ट ईश्वर ऐसी इच्छा करताभया कि प्राणियों के कर्मों के फल के भोगने के लिये मैं लोकों को उत्पन्न करूं, ऐसा विचार करके परमेश्वर वक्ष्यमाण लोकों को उत्पन्न करताभया, प्रथम आकाशादिकों को रच करके ब्रह्मांड को बनाया, ब्रह्मांड में अंभलोक, मरीचिलोक, मरलोक, आपलोक, इन नामोंवाले लोकों को उत्पन्न करता भया, आपही श्रुति अंभादिशब्दों के अर्थ को कहती है ॥

मरीचि नाम सूर्य्य की किरणों का है, सूर्य्य की किरणों का उस लोक के साथ अधिक सम्बन्ध है, इसलिये उसका नाम मरीचिलोककरके श्रुति ने कहा है, और पृथिवी लोक का नाम मरलोक है, क्योंकि पृथिवी लोक में मरण धर्मवाले प्राणी रहते हैं, और पृथिवीलोक से नीचे जो लोक हैं, वे पातालादि नाम वाले अपलोक हैं ॥ पुराणों में जिस रीति से पाताल लोक पृथिवी के नीचे लिखा है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि पृथिवी के खोदने से नीचे जल निकलता है, सिवाय जल और मिट्टी के और कुछ भी नहीं, जल के अन्दर लोक का होना असम्भव है, इसलिये वेद का लेख ठीक है, जैसे सूर्य्य चन्द्रमा आदिक सब लोक हैं, इसी प्रकार पृथिवी भी एक तारा है, और घूमती रहती है, इससे नीचे की तरफवाले तारों का नामही अतल वितलादिलोक पातालादि नामों करके कहे हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

सईक्षतेमेनुलोकालोकपालान्नुसृजाइति सोऽद्भ्यएवपुरुषंसमुद्धृत्यामूर्च्छयत् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः ईक्षत इमे नु लोकाः लोकपालान् नु सृजै इति सः अद्भ्यः एव पुरुषम् समुद्धृत्य अमूर्च्छयत् ॥ ३ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
इमेलोकाः	=ये अम्भादि लोक	लोकपालान्	=लोकपालों को यानी लोकाभिमानी देवगणों को
नु	=होनेपर		

नु=निश्चयकरके	अद्भ्यः=जलादिपञ्च
सृजै=मैं सृजूं	महाभूतोंसे
इति=ऐसा	एव=ही
सः=वह ईश्वर	पुरुषम्=विराट्रूप
ईक्षत=विचार करता	पिण्डको
भया	समुद्धृत्य=ग्रहण करके
+च=और	अमूर्च्छयत्=रचताभया
+सः=सो ईश्वर	

भावार्थः ।

सईक्षतइति ॥ मायाविशिष्ट परमेश्वर फिर इच्छा करता भया कि जिन पूर्वोक्त लोकों को मैंने रचा है, वे विना किसी रक्षक के नष्ट होजायेंगे, इस ख्याल से कि वे सब लोक स्थिर रहें मैं अब लोकपालों को रचूं, सो पूर्वोक्त इच्छावाला एक परमेश्वर पांचों भूतों से पुरुषाकार हाथ पांववाला विराट् की एक कठिन मूर्त्ति को बनाता भया, याने जैसे कुलाल तालाव के बीच से गीली मिट्टी को निकासकर एक कठिन पिंड प्रथम बनाता है तैसे परमेश्वर ने भी पांच भूतों से प्रथम एक कठिन पिंड याने गोल आकारवाला पिंड को बनाता भया ॥३॥

मूलम् ।

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्यमुखं निरभिद्यतयथा एडम्मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतांनासिकाभ्यांप्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षीभ्यांचक्षुश्चक्षुषआदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यांश्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत त्वचोलोमा

निर्लोमभ्यश्रौषधिवनस्पतयो हृदयंनिरभिद्यत हृद
यान्मनोमनसश्चन्द्रमानाभिर्निरभिद्यतनाभ्याश्रपा
नोऽपानान्मृत्युः शिश्नंनिरभिद्यताशिश्नाद्रेतोरेत
सश्रापः ॥ ४ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

तम् अभ्यतपत् तस्य अभितप्तस्य मुखम् निरभिद्यत यथा अण्डम् मुखात् वाक् वाचः अग्निः नासिके निरभिद्येताम् नासिकाभ्याम् प्राणः प्राणात् वायुः अक्षिणी निरभिद्येताम् अक्षिभ्याम् चक्षुः चक्षुषः आदित्यः कर्णौ निरभिद्येताम् कर्णाभ्याम् श्रोत्रम् श्रोत्रात् दिशः त्वक् निरभिद्यत त्वचः लोमानि लोमभ्यः श्रौषधिवनस्पतयः हृदयम् निरभिद्यत हृदयात् मनः मनसः चन्द्रमाः नाभिः निरभिद्यत नाभ्याः अपानः अपानात् मृत्युः शिश्नम् निरभिद्यत शिश्नात् रेतः रेतसः आपः ॥ ४ ॥

अन्वयः।	पदार्थः।	अन्वयः।	पदार्थः।
तम्=	तिस विराट् पुरुषाकार पिंडको	तस्य=	तिस
अभ्यतपत्=	ईश्वरअपनेज्ञानरूप तप करके तपाता भया	अभितप्तस्य=	ईश्वरसंकल्पसे अभितप्तपुरुषका
		मुखम्=	मुखाकार छिद्र
		निरभिद्यत=	निकलता भया

यथाऽण्डम्=जैसे पक्षीका अण्डा फूटता है
+च=और
मुखात्=उस मुखसे
वाक्=वाणी इन्द्रिय उत्पन्न भया
वाचः=वाणी से
अग्निः=अग्निदेवता होता भया
नासिके=दोनों नासिकाके छिद्र
निरभिद्येताम्=निकलते भये
नासिकाभ्याम्=नासिकाके छिद्रों से
प्राणः=घ्राण इन्द्रिय होता भया
प्राणात्=घ्राणइन्द्रियसे
वायुः=वायुदेवता होता भया
अक्षिणी=दोनों नेत्र
निरभिद्येताम्=निकलतेभये

अक्षिभ्याम्=उन नेत्रों से
चक्षुः=दर्शन इन्द्रिय होता भया
चक्षुषः=दर्शनेन्द्रिय से
आदित्यः=सूर्य होता भया
कर्णौ=दोनों कर्ण
निरभिद्येताम्=निकलते भये
कर्णाभ्याम्=दोनों कर्णोंसे
श्रोत्रम्=श्रवणेन्द्रिय होता भया
श्रोत्रात्=श्रवणेन्द्रियसे
दिशः=दिशाऽभिमानी देवते होते भये
त्वक्=त्वचा
निरभिद्यत=निकलतीभई
त्वचः=त्वचासे
लोमानि=लोमसहचारी स्पर्शेन्द्रिय होताभया
लोमभ्यः=स्पर्शइन्द्रिय से

औषधीवनस्पतयः = { औषधिवनस्पतियों का अधिष्ठातावायुदेवताहोताभया	न होताभया
हृदयम् = हृदयकमल	अपानात् = गुदेन्द्रियसे
निरभिद्यत = निकलता भया	मृत्युः = मृत्युदेवता उत्पन्नभया
हृदयात् = हृत्कमलसे	शिश्नम् = उपस्थेन्द्रिय स्थान
मनः = मनहोताभया	निरभिद्यत = निकलता भया
मनसः = मनसे	शिश्नात् = उपस्थेन्द्रिय से
चन्द्रमाः = चन्द्रमा होता भया	रेतः = वीर्य होता भया
नाभिः = नाभिस्थान	रेतसः = वीर्यसे
निरभिद्यत = निकलताभया	आपः = { जलाभिमानी देवताहोता भया
नाभ्याः = नाभिसे	
अपानः = गुदेन्द्रियउत्प-	

भावार्थः ।

तमिति ॥ पूर्ववाले मंत्रमें विराट् की उत्पत्ति को कहा है, तिस विराट् के अवयवों से अब लोकपालों की उत्पत्ति को कहते हैं, उस विराट् पुरुष को भगवान् तपाता भया अर्थात् उस विराट्रूपी शरीर में इन्द्रियों के छिद्र और तदभिमानी देवतों के रचने का विचार करता भया, और फिर तिस विराट् रूपी पिंड का मुखाकार छिद्र प्रथम निकलता भया, जैसे पक्षी का पका हुआ अराडा फूट जाता है और तिस मुखाकार छिद्र से वागिन्द्रिय उत्पन्न होता भया (यद्यपि वागादि इन्द्रिय सब

अपंचीकृत भूतों के कार्य्य हैं तथापि मुखरूपी गोलक से तिन की अभिव्यक्ति याने प्रतीति होती है, इसलिये तिससे उनकी उत्पत्ति को कहा है) तिस वागिन्द्रिय से अग्नि लोकपाल देवता उत्पन्न हुवा, फिर तिस विराट्रूपी पिंड से नासिकारूपी दो छिद्र निकलते भये, उन नासिका से प्राणवृत्ति के सहित घ्राण इन्द्रिय उत्पन्न होता भया, फिर तिस घ्राण इन्द्रिय से वायु देवता उत्पन्न होता भया, फिर तिस पिंड से नेत्ररूपी छिद्र निकलते भये, और नेत्र इन्द्रिय से सूर्य्य देवता उत्पन्न होता भया, फिर तिस विराट्रूपी पिंड से दो कर्ण के छिद्र निकलते हुये, उन से श्रोत्र इन्द्रिय उत्पन्न हुवा, उस श्रोत्र इन्द्रिय से दिगभिमानी देवता उत्पन्न हुवा, फिर तिस विराट् के पिंड से त्वगिन्द्रिय निकलती भई, उससे स्पर्श इन्द्रिय उत्पन्न हुवा, और स्पर्श इन्द्रिय से औषधियों का अधिष्ठाता वायु देवता उत्पन्न हुवा, फिर उसी विराट् पिंड से हृदयकमल निकलता भया, तिस हृदयकमल से मन उत्पन्न होता भया, मनरूपी अन्तःकरण से तिसका अधिष्ठाता चन्द्रमा देवता उत्पन्न होता भया, फिर तिस विराट् से नाभी स्थल निकलता भया, उस नाभी से गुदा इन्द्रिय निकलता भया, गुदा इन्द्रिय से मृत्यु उत्पन्न होता भया, फिर तिस विराट् पिंड से उपस्थ इन्द्रिय निकलता भया, उससे उपस्थ इन्द्रिय से प्रजा की उत्पत्ति का हेतु वीर्य उत्पन्न होता भया, और तिस वीर्य से जल उत्पन्न होता भया, फिर उस जल से प्रजापति अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न होता भया ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः ॥

मूलम् ।

ताएतादेवताः सृष्टाअस्मिन् महत्यर्णवेप्रापतं स्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत्ताएनमब्रुवन्नाय

तन्नंनः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिताअन्नमदामेति ॥ १।५ ॥

पदच्छेदः ।

ताः एताः देवताः सृष्टाः अस्मिन् महति अर्णवे प्रापतन् तम् अशनायापिपासाभ्याम् अन्ववार्जत् ताः एनम् अब्रुवन् आयतनम् नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिताः अन्नम् अदाम इति ॥ १ । ५ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
ताः	वे
एताः देवताः	येलोकाऽभिमानी देवता अग्निआदि
सृष्टाः	उत्पन्नकियेहुये
अस्मिन्	इस
महति	बड़े
अर्णवे	संसाररूपीसमुद्र में
प्रापतन्	गिरतेभये
तम्	उस प्रथमउत्पादितपुरुषको
अशनायापिपासाभ्याम्	भूख और प्यासकरके
+ईश्वरः	ईश्वर
अन्ववार्जत्	युक्त करता भया
ताः	वे देवता
इति	इसप्रकार
एनम्	इसईश्वरसे
अब्रुवन्	कहतेभये कि
नः	हमारेलिये
आयतनम्	कोईस्थान
प्रजानीहि	विधानकर
यस्मिन्	जिसमें
प्रतिष्ठिताः	रहतेहुये
अन्नम्	भोग्यवस्तुको
अदाम	भोगें हम

भावार्थः ।

ताइति ॥ पूर्वखंड में संपूर्ण इन्द्रियों की और तदभिमानी

देवतों की उत्पत्ति का निरूपण किया है, अब इस दूसरे खंड में उन देवतों के भोग के योग व्यष्टि देहों को और उनमें देवतों के वास करने को कहते हैं, ॥ ता इति ॥ जो इन्द्रिय अभिमानी अग्नि आदि देवता उत्पन्न हुये, वे देवता महान् समुद्ररूपी विराट् का जो ब्रह्माण्डरूपी देह है उसमें प्राप्त होते भये, और प्राप्त होकर विराट् के शरीर को क्षुधा और पिपासा वाला करते भये, फिर खुद भी क्षुधा और पिपासा करके पीड्यमान हुये तब अपने पिता परमेश्वर से कहते भये कि हे भगवन्! हमारे भोग के योग शरीर को आप बतावो जिस शरीर में हम सब देवता स्थित होकर भोग के योग्य वस्तु को भक्षणकरें ॥१।५॥

मूलम् ।

ताभ्योगामानयत्ताअब्रुवन्नवैनोयमलमितिता भ्योऽश्वमानयत्ताअब्रुवन्नवैनोऽयमलमिति ॥२।६॥

पदच्छेदः ।

ताभ्यः गाम् आनयत् ताः अब्रुवन् न वै नः अयम् अलम् इति ताभ्यः अश्वम् आनयत् ताः अब्रुवन् न वै नः अयम् अलम् इति ॥ २ । ६ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
ताभ्यः	तिन अग्नि आदिदेवताओं के लिये	ताः	वे देवता
गाम्	गवाकार पिण्ड को	इति	इस प्रकार
+ईश्वरः	ईश्वर	अब्रुवन्	कहते भये कि
आनयत्	दिखाता भया	नः	हमारे लिये
		अयम्	यह गवाकृति पिण्ड
		वै	निश्चय करके

अलम्=योग्य
न=नहीं है
ताभ्यः=तिनके अर्थ
+पुनः=फिर
अश्वम्=अश्वाकृति पिण्डको
ईश्वरः=ईश्वर
आनयत्=दिखाताभया
ताः=वे देवता
इति=इस प्रकार
अब्रुवन्=कहतेभये कि
नः=हमारे लिये
अयम्=यह अश्वाकृतिपिण्ड
वै=निश्चयकरके
अलम्=योग्य
न=नहीं है

भावार्थः ।

ताभ्यइति ॥ जब सब इन्द्रियों के देवतों ने ईश्वर से अपने भोग के योग्य शरीर को मांगा तब पांचो भूतों से रचकर गौ के आकारवाले शरीर को उनके सन्मुख किया गया ॥ तिस गौ के पिंड को देखकर देवता कहते भये कि हमारे लिये यह गौ का पिंड भोग्य के योग्य नहीं है, तब पांचो भूतों से बनाहुवा अश्व का शरीर उन देवतों के सामने लायागया, देवतों ने कहा यह भी हमारे भोग्य के योग्य नहीं है, क्योंकि इन शरीरों में विचार करने की शक्ति नहीं है, और विचारहीन होने से आनन्द कहां ॥ २ । ६ ॥

मूलम् ।

ताभ्यःपुरुषमानयत् ताअब्रुवन्सुकृतं वतेति पुरुषोवावसुकृतम् ताअब्रवीद्यथाऽऽयतनम्प्रविशतेति ॥ २ । ७ ॥

पदच्छेदः ।

ताभ्यः पुरुषम् आनयत् ताः अब्रुवन् सु-

कृतम् वत इति पुरुषः वाव सुकृतम् ताः अ-
ब्रवीत् यथायतनम् प्रविशत इति ॥ ३ । ७ ॥

अन्वयः । पदार्थः ।

ताभ्यः=तिनदेवताओं के लिये
+पुनः=फिर
पुरुषम्=पुरुष शरीरको
आनयत्=दिखाताभया
ताः=वे देवता
इति=इसप्रकार
अब्रुवन्=कहतेभये कि
सुकृतम्=शोभन यहअ-धिष्ठान है
वत=इसमें हम स-न्तुष्ट हैं
ताः=तिन देवताओं से

अन्वयः । पदार्थः ।

+ईश्वरः=ईश्वर
इति=इसप्रकार
अब्रवीत्=कहताभयाकि
यथायतनं=अपने २ यो-निस्थान में
प्रविशत=तुम सब प्रवे-शकरो
तस्मात्=इसीलिये
पुरुषः=पुरुष
वाव=ही
सुकृतम्=सुकृतहै याने पुण्य का हेतु है

भावार्थः ।

ताभ्यइति ॥ देवतों ने फिर कहा कि विचार और भोग्य के योग्य जो हो ऐसा कोई शरीर उसको हमारे लिये लावो ॥ तब पांचोभूतों का कार्य्य मनुष्यशरीर उनके सामने लाया गया, तब तिसको देखकर देवतों ने कहा कि यह शरीर हमारे भोग्य के योग्य है और हर्ष को भी प्राप्त होते भये, और कहने लगे कि यह शरीर परमेश्वर ने हमारे लिये बहुतही उत्तम बनायाहै, शोभनीय है, क्योंकि पुण्य कर्मों का कार्य है, इसी कारण लोक

में भी सब शरीरों की अपेक्षा करके मनुष्यशरीरही उत्तम कहाजाता है, फिर उन देवतों से ईश्वर कहता भया कि हे देवतो ! अपने २ गोलक स्थान में प्रवेश करो, तब जैसे राजा की आज्ञा को पाकर सेनापति अपने २ स्थानों में प्रवेश करजाते हैं, इसी प्रकार ईश्वर की आज्ञा को पाकर सब देवता भी अपने २ गोलक स्थानों में प्रवेश करते भये ॥ ३ । ७ ॥

मूलम् ।

अग्निर्वाग्भूत्वामुखंप्राविशद्वायुःप्राणोभूत्वानासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणीप्राविशद्दिशः श्रोत्रंभूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयोलोमानिभूत्वात्वचम्प्राविशंश्चन्द्रमामनो भूत्वाहृदयं प्राविशन्मृत्युरपानोभूत्वा नाभिम्प्राविशदापोरेतोभूत्वाशिश्नम्प्राविशन् ॥ ४ । ८ ॥

पदच्छेदः ।

अग्निः वाक् भूत्वा मुखम् प्राविशत् वायुः प्राणः भूत्वा नासिके प्राविशत् आदित्यः चक्षुः भूत्वा अक्षिणी प्राविशत् दिशः श्रोत्रम् भूत्वा कर्णौ प्राविशन् ओषधिवनस्पतयः लोमानि भूत्वा त्वचम् प्राविशन् चन्द्रमाः मनः भूत्वा हृदयम् प्राविशत् मृत्युः अपानः भूत्वा नाभिम् प्राविशत् आपः रेतः भूत्वा शिश्नम् प्राविशन् ॥ ४ । ८ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
अग्निः=	अग्निदेवता ईश्वरकीआज्ञासे	वाक्=	वाणीरूप
		भूत्वा=	हो करके

मुखम्=स्वयोनि मुख विषे
प्राविशत्=प्रवेशकरता भया
वायुः=वायुदेवता
प्राणः=प्राणरूप
भूत्वा=होके
नासिके=नासिकाके दोनों छिद्रोंविषे
प्राविशत्=प्रवेश करता भया
आदित्यः=सूर्यदेवता
चक्षुः=दर्शनइन्द्रिय
भूत्वा=होके
अक्षिणी=दोनों नेत्रोंविषे
प्राविशत्=प्रवेश करता भया
दिशः=दिग्देवते
श्रोत्रम्=श्रवणेन्द्रिय
भूत्वा=होके
कर्णौ=कानोंके दोनों छिद्रों विषे
प्राविशन्=प्रवेश करते भये

ओषधिवनस्पतयः=ओषधीऔर वनस्पति अभिमानी देवते
लोमानि=रोमरूप
भूत्वा=होके
त्वचम्=त्वचा विषे
प्राविशन्=प्रवेश करते भये
चन्द्रमाः=चंद्रमादेवता
मनः=मनरूप
भूत्वा=होके
हृदयम्=हृदयकमल विषे
प्राविशत्=प्रवेश करता भया
मृत्युः=मृत्युदेवता
अपानः=अपानरूप
भूत्वा=होके
नाभिम्=नाभिविषे
प्राविशत्=प्रवेश करता भया

आपः=जलदेवते	शिश्नम्=शिश्नस्थान
रेतः=वीर्यरूप	विषे
भूत्वा=होके	प्राविशन्=प्रवेश करते भये

भावार्थः ।

अग्निरिति ।। जिसकाल में ईश्वर ने देवतों को अपने २ स्थान में प्रवेश करने की आज्ञा दिया तिस काल में वागिन्द्रिय अभिमानी अग्निदेवता वागिन्द्रिय के अन्तर होकरके मुखरूपी छिद्र में प्रवेश करता भया, और वायुदेवता प्राणरूप से घ्राणइन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर नासिकारूपी छिद्रों में प्रवेश करता भया, और सूर्य्यदेवता चक्षुरूप से चक्षु इन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर नेत्ररूपी गोलक में प्रवेश करता भया, और दिग्देवता श्रोत्ररूप से श्रोत्रेन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर कर्णरूपी छिद्रों में प्रवेश करता भया और औषधी आदिकों का अधिष्ठातृ देवता त्वगिन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर चर्मरूपी त्वचा में प्रवेश करता भया, और चन्द्रमा देवता मन के अन्तर्भूत होकर हृदय में प्रवेश करता भया, और यमरूप देवता पायु इन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर अपान रूप से गुदा के मूल स्थान में प्रवेश करता भया, और प्रजापति देवता वीर्यरूप होकर शिश्न स्थान में प्रवेश करता भया ।। ४ । ८ ।।

मूलम् ।

तमशनायापिपासेअब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति सते अब्रवीदेतास्वेववांदेवतास्वाभजाम्येतासुभागिन्यौ करोमीति तस्माद्यस्यै कस्यैचदेवतायैहविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ।। ५ । ९ ।। इति द्वितीयः खण्डः ।। २ ।।

पदच्छेदः ।

तम् अशनायापिपासे अब्रूताम् आवाभ्याम् अभिप्रजानीहि इति सः ते अब्रवीत् एतासु एव वाम् देवतासु आभजामि एतासु भागिन्यौ करोमि इति तस्मात् यस्यै कस्यै च देवतायै हविः गृह्यते भागिन्यौ एव अस्याम् अशनायापिपासे भवतः ॥ ५ । ६ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
अशनाया पिपासे	भूख और प्यास दोनों	एव	ही
तम्	तिस ईश्वर से	देवतासु	अग्नि आदि देवताओं विषे
इति	इस प्रकार	वाम्	तुमदोनोंको
अब्रूताम्	कहती भई कि	आभजामि	जीविका देताहूं मैं
आवाभ्याम्	हम दोनों के लिये	+ च	और
अभिप्र जानीहि	अधिष्ठान बना	एतासु	इन देवताओं विषे
सः	वह ईश्वर	+ वाम्	तुम दोनोंको
ते	उन क्षुधा पिपासा से	भागिन्यौ	भागपाने योग्य
इति	इस प्रकार	करोमि	करताहूं मैं
अब्रवीत्	कहता भया कि	च	और
एतासु	इन	तस्मात्	इसी कारण
		यस्यै	जिस
		कस्यै	किसी

देवतायै=देवताके देने के अर्थ	अशनाया पिपासे = भूख और प्यास दोनों
हविः=होमद्रव्य	भागिन्यौ=भागपाने वाली
गृह्यते=ग्रहण किया जाता है	एव=निश्चयकरके
अस्याम्=उस देवताविषे	भवतः=होती हैं

भावार्थः ।

तमिति ॥ अब देह में क्षुधा पिपासा के प्रवेश को भी प्रश्न-पूर्वक कहते हैं, तिस परमेश्वर को क्षुधा पिपासा भी इसप्रकार कहते भये, हे भगवन्! हमारे लिये भी इसी शरीर में स्थान दो, परमेश्वर तब उनसे कहता है, यह जो अग्नि आदि देवता हैं इन्हीं में रहकर तुम हवि आदिक भाग को ग्रहण करो, यही देवता इन्द्रिय तुम्हारे रहने के स्थान होवैंगे, जिस कारण सृष्टि के आदि में परमेश्वर ने उनसे ऐसा कहा है तिसी कारण अग्नि आदिक देवतों के लिये भोग्य वस्तु समर्पण करीजाती है, और क्षुधा पिपासा अपने भाग को उन्हीं देवतों से ग्रहण करलेते हैं, याने हवि करके जब अग्नि आदिक देवता तृप्त हो जाते हैं तब क्षुधा पिपासा भी तृप्त होजाते हैं ॥ ५ । ६ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

मूलम् ।

सईक्षतेमेनुलोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यःसृजाइति ॥ १ । १० ॥

पदच्छेदः ।

सः ईक्षते इमे नु लोकाः च लोकपालाः च अन्नम् एभ्यः सृजै इति ॥ १ । १० ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
सः	वह ईश्वर	च	और
इति	इस प्रकार	लोकपालाः	लोकपाल
नु	फिर	+ सन्ति	हैं
ईक्षते	विचार करता भया कि	एभ्यः	इनके लिये
+ ये	जो	च	निश्चयकरके
इमे	ये	अन्नम्	भोग्यवस्तुको
लोकाः	लोक	सृजै	सृजूं मैं

भावार्थः ।

पूर्व देवतों की और इन्द्रियों की उत्पत्ति को कहा फिर उनकी प्रवृत्ति के हेतुभूत जो भोग का साधन क्षुधा तृषा है उनकी सृष्टि का भी कथन किया अब भोग्य सृष्टि को याने भोगने के योग सृष्टि को कहते हैं। सइति ॥ परमेश्वर फिर इस प्रकार इच्छा करता भया कि पृथिवी आदि लोकों को और सहित शरीर के इन्द्रियादि देवतों देव और लोकपालों को मैंने उत्पन्न किया, परन्तु अन्न से विना उनका जीना असंभव है, इस लिये उनके वास्तेमैं अब अन्न को रचूं ॥ १ । १० ॥

मूलम् ।

सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्योमूर्त्तिरजायत यावैसामूर्त्तिरजायतान्नं वै तत् ॥ २ । ११ ॥

पदच्छेदः ।

सः अपः अभ्यतपत् ताभ्यः अभितप्ताभ्यः

मूर्त्तिः अजायत या वै सा मूर्त्तिः अजायत अन्नम् वै तत् ॥ २ । ११ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
सः=	सो ईश्वर
अपः=	जलआदि पंच महाभूतों को
अभ्यतपत्=	अन्नभावना से भावित करता भया याने पञ्चमहाभूतों से अन्न उत्पन्न हो ऐसा संकल्प करता भया
अभितप्ताभ्यः=	ईश्वर करके भावितहुये
ताभ्यः=	उन पञ्चमहाभूतों से
मूर्त्तिः=	घनअर्थात्कठिनरूप*चराचर अन्न
अजायत=	उत्पन्न होता भया
च=	और
या=	जो
सामूर्त्तिः=	वह चराचर लक्षणवाली मूर्त्तिघनरूप
अजायत=	उत्पन्न भई
तत्=	सो
एव=	ही
वै=	निश्चय करके
अन्नम्=	अन्न यानीभोग्यवस्तु है

भावार्थः ।

सइति ॥ ऐसा विचार करके परमेश्वर पंचभूतों को तपाता भया, तिन पांचो भूतों से मनुष्यों के लिये व्रीहि यवादिरूप अन्न, पशुवोंकेलिये तृणादिरूप अन्न, सिंहादिकोंकेलिये मृगादि-

* चराचर=चर चलने फिरनेवाले जो भोग्य है जैसे चूहा भोग्य है बिल्ली का, अचर स्थिर वस्तु जो भोग्य है जैसे वनस्पति आदिक भोग्य हैं मनुष्यों के ॥

रूप अन्न, सर्पादिकों के लिये वायुरूपी अन्न, और मार्जारादिकों के लिये मूषकादिरूप अन्न को उत्पन्न करता भया ॥ २।११ ॥

मूलम् ।

तदेतदभिसृष्टंपराङत्यजिघांसत्तद्वाचाऽजिघृक्षत्त न्नाशक्नोद्वाचाग्रहीतुं सयद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्या हृत्यहैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ३ । १२ ॥

पदच्छेदः ।

तत् एतत् अभिसृष्टम् पराङ् अत्यजिघांसत् तत् वाचा अजिघृक्षत् तत् न अशक्नोत् वाचा ग्रहीतुम् सः यद्धा एनत् वाचा अग्रहैष्यत् अभिव्याहृत्य हा एव अन्नम् अत्रप्स्यत् ॥ ३ । १२ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
तत्	सो	अजिघृक्षत्	ग्रहणकरने को चाहता भया
अभिसृष्टम्	सृजाहुआ	+परन्तु	परन्तु
एतत	यह अन्न	+तत्	तिस अन्नको
पराङ्	विमुखहुवा यानी मुँह मोड़कर	वाचा	वाक्इन्द्रिय से
अत्यजिघांसत्	भागनेको चाहता भया	ग्रहीतुम्	ग्रहणकरने को
तत्	तिस अन्नको	न	नहीं
वाचा	वाक् इन्द्रिय से याने मुखकरके	अशक्नोत्	समर्थ होता भया
सःपुरुषः	वह पुरुष	यद्धा	अगर
		सः	वहआदिपुरुष

एनत्=इस अन्नको	अन्नम्=भोग्य वस्तु अन्नको
वाचा=वागिन्द्रिय से	अभि व्याहृत्य = वाणी के उच्चारणमात्र सेही
अग्रहैष्यत्=ग्रहण कर सक्ता	अत्रप्स्यत्=लोक तृप्त होजाता
हा=तो	

भावार्थः ।

तदेनदिति ॥ अब अन्न को ग्रहण करने के साधन को कहते हैं ॥ तदेतदिति ॥ यह जो व्रीहियवादि अन्न हैं तिसको उस पुरुष के सन्मुख रखदिया तब वह अन्न उनको अपना मृत्यु जानकरके भागा जैसे मूषा बिलार से भागता है तब वह पुरुष वागिन्द्रिय करके तिस अन्न को ग्रहण करने की इच्छा करता भया तब वह वागिन्द्रिय करके तिसके ग्रहण करने में समर्थ न होता भया अगर प्रथम उत्पन्न हुवा पुरुष वागिन्द्रिय करके अन्न को ग्रहण करने में समर्थ होता तो इदानींकाल के संपूर्ण भोक्तृवर्ग केवल भोग्यवस्तु अन्न को वाणी के उच्चारण करने से ही तृप्त होजाते अर्थात् व्रीहियवादिरूप अन्नों के नाम लेने से ही तृप्त होजाते पर ऐसा न होने से इदानींकाल के जीव भी अन्न का नाम लेने से तृप्त नहीं होते हैं ॥ ३ । १२ ॥

मूलम् ।

तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेनग्रहीतुम् स यद्धैनत्प्राणेनाऽग्रहैष्यदभिप्राण्यहैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ४ । १३ ॥

पदच्छेदः ।

तत् प्राणेन अजिघृक्षत् तत् न अशक्नोत्

प्राणेन गृहीतुम् सः यद्धा एनत् प्राणेन अग्रहैष्यत् अभिप्राण्य हा एव अन्नम् अत्रप्स्यत् ॥ ४ । १३ ॥

अन्वयः । पदार्थः ।	अन्वयः । पदार्थः ।
तत्=तिस अन्नको	अशक्नोत्=समर्थ होता भया
प्राणेन=घ्राणेन्द्रिय द्वारा	यद्धा=अगर
सः=वह आदिपुरुष	सः=वह आदिपुरुष
अजिघृक्षत्=ग्रहण करने को इच्छता भया	एनत्=इस भोग्य अन्न को
+ परन्तु=परन्तु	प्राणेन=घ्राणेन्द्रियद्वारा
तत्=तिस अन्नको	अग्रहैष्यत्=ग्रहणकरसक्ता
प्राणेन=घ्राण इन्द्रिय करके	हा=तो
गृहीतुम्=ग्रहणकरनेको	अन्नम्=भोग्यवस्तुको
न=नहीं	अभिप्राण्य=सूंघ करके
	एव=ही
	अत्रप्स्यत्=लोक तृप्त होजाता

भावार्थः ।

तदिति ॥ तिस पूर्वोक्त अन्न को वह आदिपुरुष घ्राणेन्द्रिय करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया, पर वह घ्राणेन्द्रिय करके तिस अन्न के ग्रहण करने में समर्थ न होताभया, यदि वह प्रथम पुरुष घ्राणेन्द्रिय करके अन्न को ग्रहण करसक्ता तब इदानींकाल के भी सब जीव अन्न को सूंघ करकेही तृप्त होजाते, पर ऐसा न होने से अब कोईभी जीव अन्न को सूंघ करके तृप्त नहीं होता है ॥ ४ । १३ ॥

मूलम् ।

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषा गृहीतुम् स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यत् दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ५ । १४ ॥

पदच्छेदः ।

तत् चक्षुषा अजिघृक्षत् तत् न अशक्नोत् चक्षुषा गृहीतुम् सः यद्वा एनत् चक्षुषा अग्रहैष्यत् दृष्ट्वा हा एव अन्नम् अत्रप्स्यत् ॥ ५ । १४ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
सः	वह आदि पुरुष
तत्	तिस अन्नको
चक्षुषा	नेत्रेन्द्रिय द्वारा
अजिघृक्षत्	ग्रहणकरने की इच्छा करता भया
+ परन्तु	परन्तु
तत्	तिस भोग्य अन्न को
चक्षुषा	चक्षु इन्द्रिय करके
गृहीतुम्	ग्रहण करने को
न	नहीं
अशक्नोत्	समर्थ होता भया
यद्वा	अगर
सः	वह पुरुष
एनत्	इस भोग्य अन्न को
चक्षुषा	नेत्र इन्द्रिय करके
अग्रहैष्यत्	ग्रहण कर सक्ता
हा	तो
अन्नम्	भोग्यवस्तु को
दृष्ट्वा	देखकरके

एव = ही	अत्रप्स्यत् = लोक तृप्त होजाता

भावार्थः ।

तच्चक्षुषेति ॥ प्रथम उत्पन्न हुवा पुरुष अन्न को चक्षुइन्द्रिय करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया, पर वह चक्षुइन्द्रिय करके तिस अन्न को ग्रहण करने में समर्थ न होताभया, यदि चक्षुइन्द्रिय करके अन्न के ग्रहण करने में वह आदिपुरुष समर्थ होता तो इदानींकाल के भी सब लोक अन्नको देख करकेही तृप्त होजाते, पर ऐसा नहीं है, क्योंकि जैसा ईश्वरने प्रथम संकेत किया है, वैसाही चला आता है ॥ ५ । १४ ॥

मूलम् ।

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेणग्रहीतुम् स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ६ । १५ ॥

पदच्छेदः ।

तत् श्रोत्रेण अजिघृक्षत् तत् न अशक्नोत् श्रोत्रेण गृहीतुम् सः यद्वा एनत् श्रोत्रेण अग्रहै-ष्यत् श्रुत्वा हा एव अन्नम् अत्रप्स्यत् ॥ ६ । १५ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
तत्	= तिसअन्नको	अजिघृक्षत्	= ग्रहण करना चाहता भया
श्रोत्रेण	= श्रवणेन्द्रिय द्वारा	+ परन्तु	= परन्तु
सः	= वह आदि पुरुष	तत्	= तिस भोग्य अन्नको

श्रोत्रेण = श्रवणेन्द्रिय करके	श्रोत्रेण = श्रवणेन्द्रिय द्वारा
गृहीतुम् = ग्रहण करने को	अग्रहैष्यत् = ग्रहण करसकता
न = नहीं	हा = तो
अशक्नोत् = समर्थ होता भया	अन्नम् = अन्नको
यद्वा = अगर	श्रुत्वा = सुनकरके
+सः = वह	एव = ही
एनत् = इस भोग्य अन्नको	अत्रप्स्यत् = लोक तृप्त होजाता

भावार्थः ।

श्रोत्रेणेति ॥ फिर प्रथम पुरुष तिस अन्न को श्रोत्रेन्द्रिय करके ग्रहण करने को उद्यत होता भया, परंतु वह श्रोत्रेन्द्रिय करके तिस अन्न के ग्रहण करने में समर्थ न होता भया, यदि वह श्रोत्रेन्द्रिय करके तिसके ग्रहण करने में समर्थ होता तो इदानींकाल के भी सब लोक श्रोत्र से श्रवण करकेही तृप्त होजाते ॥ ६ । १५ ॥

मूलम् ।

तत्त्वचाऽजिघृक्षततन्नाशक्नोतत्वचागृहीतुम् स यद्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यतस्पृष्ट्वाहैवान्नमत्रप्स्यत् ७ । १६ ॥

पदच्छेदः ।

तत् त्वचा अजिघृक्षत् तत् न अशक्नोत् त्वचा गृहीतुम् सः यद्वा एनत् त्वचा अग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हा एव अन्नम् अत्रप्स्यत् ॥ ७ । १६ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
तत्	तिसअन्नको
त्वचा	स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा
+ सः	वह आदिपुरुष
अजिघृक्षत्	ग्रहणकरने को इच्छाकरता भया
+ परन्तु	परन्तु
तत्	तिस अन्नको
त्वचा	स्पर्शनेन्द्रिय करके
गृहीतुम्	ग्रहणकरनेको
न	नहीं
अशक्नोत्	समर्थ होता भया
यद्धा	अगर
सः	वह पुरुष
एनत्	इस भोग्य अन्नको
त्वचा	स्पर्शनेन्द्रिय करके
अग्रहैष्यत्	ग्रहणकरसक्ता
हा	तो
अन्नम्	भोग्यअन्नको
स्पृष्ट्वा	स्पर्शकरके
एव	ही
अत्रप्स्यत	लोकतृप्तहोजाता

भावार्थः ।

तत्त्वचेति ॥ फिर वह आदि पुरुष तिस अन्न को त्वगिन्द्रिय करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया, पर वह त्वगिन्द्रिय करके तिस अन्न के ग्रहण करने में समर्थ न होता भया, यदि वह अन्न को त्वगिन्द्रिय करकेही ग्रहण करलेता तब इदानींकाल के भी सब लोक त्वगिन्द्रिय द्वारा स्पर्श करके ही तृप्त होजाते ॥ ७ । १६ ॥

मूलम् ।

साऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोन्मनसागृहीतुम्

स यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ८ । १७ ॥

पदच्छेदः ।

तत् मनसा अजिघृक्षत् तत् न अशक्नोत् मनसा गृहीतुम् सः यद्वा एनत् मनसा अग्रहैष्यत् ध्यात्वा हा एव अन्नम् अत्रप्स्यत् ॥ ८।१७ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
तत्	तिसअन्नको
मनसा	मनसे
+ सः	वह आदिपुरुष
अजिघृक्षत्	ग्रहणकरनेकोइच्छाकरताभया
+ परंतु	परंतु
तत्	तिसभोग्यअन्नको
मनसा	मनकरके
गृहीतुम्	ग्रहणकरनेको
न	नहीं
अशक्नोत्	समर्थ होता भया
यद्वा	अगर
सः	वह पुरुष
एनत्	इसभोग्यअन्नको
मनसा	मनसे
अग्रहैष्यत्	ग्रहणकरसक्ता
हा	तो
अन्नम्	भोग्यवस्तुको
ध्यात्वा	ध्यानकरके
एव	ही
अत्रप्स्यत्	लोक तृप्तहोजाता

भावार्थः ।

तन्मनसेति ॥ फिर वह विराट्पुरुष इस अन्न को मन

करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया, पर ऐसा करने को समर्थ न भया, यदि वह मन करके इस अन्न को ग्रहण कर लेता तो इदानींकाल के जितने जीव विराट् पुरुष से उत्पन्नभये हैं सब इस अन्न के संकल्पमात्र करकेही तृप्त होजाते ॥ ८ । १७ ॥

मूलम् ।

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेनग्रहीतुम् सयद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्यहैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ९ । १८ ॥

पदच्छेदः ।

तत् शिश्नेन अजिघृक्षत् तत् न अशक्नोत् शिश्नेन गृहीतुम् सः यद्धा एनत् शिश्नेन अग्रहैष्यत् विसृज्य हा एव अन्नम् अत्रप्स्यत् ॥ ९ । १८ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
तत्	तिस अन्न को	गृहीतुम्	ग्रहणकरनेको
शिश्नेन	प्रजननइन्द्रियद्वारा	न	नहीं
+ सः	वह आदिपुरुष	अशक्नोत्	समर्थहोता भया
अजिघृक्षत्	ग्रहण करनेको इच्छता भया	यद्धा	अगर
+ परन्तु	परन्तु	सः	वह
तत्	तिस अन्नको	एनत्	इस अन्नको
शिश्नेन	प्रजनन इन्द्रिय करके	शिश्नेन	प्रजननेन्द्रिय से
		अग्रहैष्यत्	ग्रहणकरसक्ता
		हा	तो

अन्नम्=भोग्यवस्तुको विसृज्य=त्यागकरके एव=ही	अत्रप्स्यत्=लोकतृप्तहो- जाता

भावार्थः ।

तच्छिश्नेनेति ॥ फिर वह प्रथम पुरुष अन्न को शिश्नेन्द्रिय करके अर्थात् लिंगइन्द्रिय करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया, परन्तु लिंगइन्द्रिय करके वह ग्रहण करने में समर्थ न होता भया यदि वह लिंगइन्द्रिय करके ग्रहण कर लेता तो इदानींकाल के जीव भी वीर्य की तरह तिसका त्याग करकेही तृप्त होजाते ॥ ६ । १८ ॥

मूलम् ।

तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत्सएषोऽन्नस्यग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वाएषयद्वायुः ॥ १० । १९ ॥

पदच्छेदः ।

तत् अपानेन अजिघृक्षत् तदा आवयत् सः एषः अन्नस्य ग्रहः यद्वायुः अन्नायुः वै एषः यद्वायुः ॥ १०।१९ ॥

अन्वयः । पदार्थः ।	अन्वयः । पदार्थः ।
तत्=तिस अन्न को अपानेन=अपानवायु से यानी मुखद्वारा सः=वह आदि- पुरुष	अजिघृक्षत्=ग्रहण करने की इच्छा करताभया तदा=तब सः=वह आवयत्=ग्रहण कर सकाभया

यद्वायुः=जो अपान वायु है
सः=सो
एषः=यह
अन्नस्य=अन्नका
ग्रहः=ग्राहक है
+च=और
+एषः=यह
+यद्वायुः=जो अपान वायु है
+सः=सो
वै=निश्चय करके
अन्नायुः=अन्न भोग द्वारा भोक्ता का आयुर्वृद्धि करनेवाला है

भावार्थः ।

तदपानेनेति ॥ जब वह प्रथम पुरुष पूर्वोक्त इन्द्रियों करके अन्न के ग्रहण करने में समर्थ न होता भया तब फिर अपान वायु करके अर्थात् मुखद्वार के भीतर जो वायु गमन करती है तिस वायु करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया तब वह तिस अन्न को भक्षण कर लेता भया इसलिये अपान वायु अन्न का ग्राहक है और यही निश्चय करके अन्न द्वारा अन्न के भोक्ता का आयुर्वृद्धि करनेवाला है ॥ १० । १६ ॥

मूलम् ।

स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्याइति स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतम् यदि प्राणेनाभिप्राणितं यदि चक्षुषा दृष्टं श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यवपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोहमिति ॥ ११ । २० ॥

पदच्छेदः ।

सः ईक्षत कथम् नु इदम् मद्दते स्यात् इति सः ईक्षत कतरेण प्रपद्यै इति सः ईक्षत यदि वाचा अभिव्याहृतम् यदि प्राणेन अभिप्राणितम् यदि चक्षुषा दृष्टम् यदि श्रोत्रेण श्रुतम् यदि त्वचा स्पृष्टम् यदि मनसा ध्यातम् यदि अपानेन अभ्यवपानितम् यदि शिश्नेन विसृष्टम् अथ कः अहम् इति ॥ ११।२० ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
सः	सो ईश्वर
इति	ऐसा
नु	पुनः
ईक्षत	विचार करता भया कि
इदम्	यह कार्यकारणरूपपिंड
मद्दते	मुझ विना
कथम्	कैसे
स्यात्	रहेगा
च	और
कतरेण	किस मार्गसे
प्रपद्यै	मैं प्रवेश करूं इस पिण्डरूप पुरमें
इति	ऐसा
सः	वह ईश्वर
ईक्षत	विचार करता भया
अथ	फिर
इति	इस प्रकार
सः	वह ईश्वर
ईक्षत	विचार करता भया कि
यदि	अगर
+ इन्द्रियाभिमानी देवः	इन्द्रियाभिमानी देवता
वाचा	वाणी करके

अभिव्याहृतम् = बोला
यदि = अगर
घ्राणेन = घ्राणेन्द्रिय करके
अभिप्राणितम् = सूंघा
+यदि = अगर
चक्षुषा = नेत्र करके
दृष्टम् = देखा
यदि = अगर
श्रोत्रेण = श्रोत्रेन्द्रिय करके
श्रुतम् = सुना
यदि = अगर
त्वचा = स्पर्शेन्द्रिय करके
स्पृष्टम् = स्पर्श किया
यदि = अगर
मनसा = मनकरके
ध्यातम् = ध्यान किया
यदि = अगर
अपानेन = अपानवायु करके
अभ्यवपानितम् = अशनकिया याने खाया
यदि = अगर
शिश्नेन = शिश्नेन्द्रिय करके
विसृष्टम् = विसर्जनकिया याने त्याग किया
+ तु = तो
अहम् = मैं
कः = कौनहूं

भावार्थः।

सईक्षतेति॥ आत्मा को संसारी पुरुष बनाने के लिये प्रथम अन्नपानादिरूप भोग सृष्टि का निरूपण किया, अब भोग के स्वामी के स्वरूप को दिखलाने के लिये ईश्वर की इच्छा को दिखलाते हैं॥ सईक्षत॥ वह परमात्मा परमेश्वर ऐसा विचारता भया कि पुर के स्वामी के विना पुर की रचना शोभा को प्राप्त नहीं होती है और न वह पुर बना रह सक्ता है

इसलिये भोग का स्वामी बन कर मैं इस शरीर में प्रवेश करूं, फिर सोचा कि इस शरीर में प्रवेश करने के दो मार्ग हैं, एक तो पाद का अग्रभाग है, दूसरा शिर में ब्रह्मरन्ध्र द्वार है, उन दोनों मार्गों में से किसमार्ग करके मैं इस शरीर में प्रवेश करूं, विना मेरे प्रवेश करने के इस शरीर का व्यवहार नहीं चलैगा, यदि इन्द्रियाभिमानी देवता वागिन्द्रिय करके बोला, घ्राणेन्द्रिय करके सूंघा, चक्षु इन्द्रिय करके देखा, श्रोत्र इन्द्रिय करके श्रवण किया, त्वगिन्द्रिय करके स्पर्श किया, मन करके ध्यान किया, अपानवायु करके अन्न का भक्षण किया, उपस्थइन्द्रिय करके वीर्य का त्याग किया, तो मैं कौन हूं, क्या मेरा स्वरूप है, किसका मैं स्वामी हूं, यह सब व्यवहार मेरे बगैर कैसे होगा, और कौन जानैगा कि इस शरीर का व इन्द्रियों का प्रेरक मैंही हूं, और इन सबसे पृथक् हूं ॥ ११ । २० ॥

मूलम् ।

सएतमेवसीमानंविदार्य्यैतयाद्वारा प्रापद्यत सैषाविदृतिर्नामद्वास्तदेतन्नान्दनंतस्य त्रयआवसथास्त्रयः स्वप्नाअयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥ १२ । २१ ॥

पदच्छेदः ।

सः एतम् एव सीमानम् विदार्य एतया द्वारा प्रापद्यत सा एषा विदृतिः नाम द्वाः तदेतत् नान्दनम् तस्य त्रयः आवसथाः त्रयः स्वप्नाः अयम् आवसथः अयम् आवसथः अयम् आवसथः इति ॥ १२ । २१ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
सः	वह ईश्वर	नान्दनम्	ब्रह्मानंदप्राप्ति काद्वारहै यानी आनन्दकादे-नेवाला है
एतम्	इस	तस्य	तिसपुराधीश ईश्वरके
एव	ही	त्रयः	तीन
सीमानम्	त्रिकपाल संधि ब्रह्मरन्ध्र को	आवसथाः	स्थान हैं
विदार्य	छिद्रकरके	त्रयः	तीन
एतया	उसी	स्वप्नाः	स्वप्न हैं
द्वारा	मार्गसे	सः	वह
प्रापद्यत	प्रवेशकरता भया	अयम्	यही
सा	सो	आवसथः	स्थान है
एषा	यह	अयम्	यही
द्वाः	मार्ग	आवसथः	स्थान है
विदृतिः	विदृति किया हुआ याने छेदा हुआ	अयम्	यही
		आवसथः	स्थान है
		अयम्	यही
तदेतत्	वह यह	आवसथः	स्थान है

भावार्थः ।

सइति ॥ वागादि इन्द्रियों के व्यवहार की सिद्धि के लिये मेरे को अवश्यही इस शरीर में प्रवेश करना चाहिये, ऐसा विचार करके वह परमेश्वर ब्रह्मरन्ध्रमार्ग से शरीर में प्राप्त होता भया, इसी कारण मूर्द्धा मेंही ज्ञानेन्द्रियों की बाहुल्यता

करके उपलब्धि होती है, यहीं ब्रह्मानन्द के प्राप्ति का द्वार है, इसका नाम विद्रति है, क्योंकि परमात्मा ने इसको विदीरण करके शरीर के अन्तर प्रवेश किया है, और इसी द्वार से उपासक मरण समय में ब्रह्मलोक को जाकर आनंद भोगता है, इस शरीर में प्रविष्ट हुआ जो आत्मा है उसके क्रीड़ा करने के तीन स्थान हैं, एक तो नेत्र स्थान है, जो आत्मा का जाग्रत् अवस्था है, और दूसरा कंठस्थान है, जो उसका स्वप्न अवस्था है, और तीसरा हृदयस्थान है, जो उसका सुषुप्तावस्था है, इन तीनों स्थानों में बैठकर वह बाहर भीतर विश्व का द्रष्टा है ॥ १२ । २१ ॥

नोट—जो श्रुतिने आवसथा याने स्थान तीनवार दिखाया है उसका अभिप्राय यह है कि जाग्रत् अवस्था में दक्षिण नेत्र, और स्वप्न में कंठस्थ प्राण, सुषुप्ति में हृदयकमल ये तीन स्थान परमात्मा के रहने के हैं ॥

मूलम् ।

स जातो भूतान्यभिव्यैक्षत् किमिहान्यंवावदिषदिति स एतमेव पुरुषंब्रह्मततममपश्यदिदमदर्शमिति ॥ १३ । २२ ॥

पदच्छेदः ।

सः जातः भूतानि अभिव्यैक्षत् किम् इह अन्यम् वा अवादिषत् इति सः एतम् एव पुरुषम् ब्रह्म ततम् तमम् अपश्यत् इदम् अदर्शम् इति ॥ १३ । २२ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
सः=	वहपुरुष याने अंतःकरण विशिष्ट चैतन्य आत्मा	अवदिषत्=	कहै
जातः=	उत्पन्नहुआ	+अतः=	इसलिये
भूतानि=	भूतों को	एतम्एव=	इसही
अभिव्यैक्षत्=	भलीप्रकार विचार करता भया कि	पुरुषम्=	पुरुषको याने अपने आपकोही
इति=	ऐसे	ततमम्=	अत्यन्त करके व्याप्त
इह=	शरीर विषे	ब्रह्म=	ब्रह्मरूप
अन्यम्=	अपने से भिन्न औरों को	अपश्यत्=	देखता भया और कहता भया कि
किम्=	क्या	इति=	वारंवार इस प्रकार
वा=	निश्चय करके	इदम्=	इस ब्रह्मको याने अपने आपको
		अदर्शम्=	मैं साक्षात् देखता भया

भावार्थः ।

सजातइति ॥ वह परमात्मा देह में प्रवेश करके और जन्म, मरण, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, करके संयुक्त होने के कारण संसारी होता भया, और शास्त्रगुरु के उपदेश करके विचार करता भया कि यह जो दृश्यमान आकाशादि भूत और प्राणी हैं सो ये सब

कहां से उत्पन्न होते हैं, और उनकी कौन रक्षा करता है और किसमें स्थिर रहते हैं, और किसमें लीन होजाते हैं, विचारके पश्चात् ऐसा जानताभया कि जो आत्मा शरीर विषे स्थित है और जो जीव कहा जाता है वही ब्रह्म है, वही व्यास होकर संपूर्ण दृश्यमान जगत्का द्रष्टा है, उससे इतर और कोई ब्रह्म नहीं है ॥१३।२२॥

मूलम् ।

तस्मादिदन्द्रोनामेदन्द्रोहवैनामतमिदन्द्रंसन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेणपरोक्षप्रियाइवहिदेवाः परोक्षप्रियाइवहिदेवाः ॥ १४ । २३ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मात् इदन्द्रः नाम इदन्द्रः हवै नाम तम् इदन्द्रम् सन्तम् इन्द्रम् इति आचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रियाः इव हि देवाः परोक्षप्रियाः इव हिदेवाः ॥ १४ । २३ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
तस्मात्	तिस कारण से	इदन्द्रः	इदन्द्र नाम
इदन्द्रः	इदन्द्रनाम	हवै	निश्चय करके
नाम	प्रसिद्ध है परमात्मा	नाम	प्रसिद्ध है लोकमें
च	और	तम्	तिस

मूलम् ।

पुरुषेहवाअयमादितोगर्भोभवति यदेतद्रेतस्तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्मन्येवात्मानं विभर्तितद्यदास्त्रियां सिञ्चत्यथैनञ्जनयति तदस्य प्रथमंजन्म ॥ १ । २४ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषे हवै अयम् आदितः गर्भः भवति यत् एतत् रेतः तत् एतत् सर्वेभ्यः अङ्गेभ्यः तेजः सम्भूतम् आत्मनि एव आत्मानम् बिभर्ति तत् यदा स्त्रियाम् सिञ्चति अथ एनम् जनयति तत् अस्य प्रथमम् जन्म ॥ १ । २४ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
अयम्=	यह स्थूल शरीर
हवै=	निश्चय करके
पुरुषे=	पुरुष विषे
आदितः=	पहिले
गर्भः=	वीर्यरूप
भवति=	होता है
यत=	जो
एतत्=	यह
रेतः=	वीर्य है
तत्=	सो
एतत्=	यह
तेजः=	साररूप
सर्वेभ्यः अङ्गेभ्यः=	अन्नमयपिंड केसबअंगोंसे
सम्भूतम=	उत्पन्नहुआ
आत्मानम्=	शरीर को
आत्मनि=	अपने में

एव=निश्चय करके	अथ=तब
बिभर्ति=धारणकरता है	एवम्=इस प्रकार शरीर को
तत्=तिस वीर्यको	जनयति=उत्पन्नकरताहै
यदा=जब ऋतु-काल विषे	तस्मात्=तिसकारण
पुरुषः=पुरुष	अस्य=इस जीवका
स्त्रियाम्=स्त्रीरूप अग्नि में	तत्=वह सिंचनकर्म
सिञ्चति=सिंचनकरता है	प्रथमम्=पहिला
	जन्म=जन्म है

भावार्थः ।

पुरुषेहवेति ॥ शरीर में दशम द्वार को विदीर्ण करके जिस आत्मा ने प्रवेशकिया है और जीवरूप बना है, उसका शरीर पिता के शरीर में प्रथम वीर्यरूप करके गर्भ को प्राप्त होता है, अर्थात् अन्नद्वारा पिता के वीर्य में आकर स्थित होता है, इसलिये यह जो पुरुष के शरीर में वीर्य है सोई संपूर्ण शरीर के अंगों का तेज है, और जो पुरुष वीर्य की रक्षा करता है उसके मुख की क्रांति और सौंदर्य्यता औरों से अधिक होती है; क्योंकि वीर्य्यही शरीर में सारभूत है ॥ और जो यह कहाहै कि अपने को ही अपनेमें पुरुष धारण करताहै, उसका तात्पर्य यह है कि अपने शरीर का सारभूत जो वीर्य है तिस वीर्य को प्रथम पुरुष अपने में ही गर्भ की तरह धारण करता है, जब ऋतुकाल में पुरुष वीर्य को स्त्री की योनि में सिंचन करता है तब तिस वीर्य को गर्भरूप करके स्त्री धारण करती है, फिर जीवान्तर करके वसिष्ठ शरीर को स्त्री उत्पन्न

करती है यह जीवका प्रथम जन्म कहाजाता है ॥प्र०॥ आत्मा वै जायते पुत्रः ॥ पिता का आत्माही पुत्ररूप होकर उत्पन्न होता है, जब श्रुति ऐसी कहती है, तब फिर जीवांतर की उत्पत्ति कैसे होती है ॥ उ० ॥ श्रुति में जो आत्मशब्द है सो शरीर का वाचक है, और शरीर का ही सारभूत वीर्य है, वह भी आत्मशब्द करके कहा जाता है, सो वही पिता का अपना आत्मा है, वही पुत्ररूप होकर उत्पन्न होता है, अर्थात् पुत्रका शरीर बनकर उत्पन्न होताहै, और जीव तिसमें कर्मानुसार देशांतर या लोकांतर से आता है, यदि पिता का आत्मा चेतन पुत्र होकर उत्पन्न होवै, तब वह एक होने के कारण पुत्रोत्पत्ति समय पिता को मरजाना चाहिये, पर ऐसा तो नहीं होता है, फिर आत्मा निरवयव है, तिसके टुकड़े भी नहीं होसक्ते हैं, जोकि थोड़ासा पुत्ररूप होकर और थोड़ासा कन्यारूप होकर उत्पन्न होता रहे, यदि पुत्र पिता का आत्मा ही रूप होकर उत्पन्न होवै, तब पिता के बराबर ही पुत्र को होना चाहिये, यदि पिता धनी, निर्धनी, अंधा या बहरा हो तो वैसाही पुत्र भी होना चाहिये, सो तो नहीं होताहै, और जीव के जन्मांतर का भी अभाव होजावैगा, पशु हमेशा पशुही रहेंगे, मनुष्य सदा मनुष्य ही रहेंगे, कर्म का भी लोप होजायगा, इसलिये श्रुति में जो आत्मशब्द है वह चेतन का वाचक नहीं है, किंतु शरीर का वाचक है ॥ १ । २४ ॥

मूलम् ।

तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा स्वमङ्गं तथा तस्मादेनां न हिनस्ति साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति ॥ २ । २५ ॥

पदच्छेदः ।

तत् स्त्रियाः आत्मभूयम् गच्छति यथा स्वम्

अङ्गम् तथा तस्मात् एनाम् न हिनस्ति सा अस्य एतम् आत्मानम् अत्र गतम् भावयति ॥ २ । २५ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
यथा	जैसे	न	नहीं
स्वम्	अपना	हिनस्ति	पीड़ित करता है
अंगम्	अंग है	सा	वह गर्भवती स्त्री
तथा	तैसे	अत्र	अपने गर्भरूप आत्मामें
तत्	वह वीर्य	अस्य	इस भर्ता के
स्त्रियाः	स्त्री के	एतम्	इसवीर्यरूप
आत्मभूयम्	आत्मभाव याने शरीरभाव को	गतम्	प्राप्त हुये
गच्छति	प्राप्तहोताहै	आत्मानम्	आत्माको
तस्मात	तिस कारण	भावयति	पालन पोषण करतीहै
एनाम्	इसमाताको		
तत्	वह वीर्य		

भावार्थः ।

ततइति ॥ प्र० ॥ जैसे दूसरे का त्यागा हुआ बाल दूसरे के शरीर में लगकर उसके दुःखका हेतु होता है, तैसे ही पुरुष करके त्यागा हुआ वीर्य भी स्त्री के गर्भाशयमें प्रवेश करके तिस के भी दुःखका ही हेतु होता होगा॥ उ० ॥ जो स्त्री की योनिमें प्राप्त हुआ पुरुष का वीर्य है, वह स्त्री के शरीर का अंग बनजाता है, जैसे अपने शरीर के हाथ पाद अंग अपने शरीर से भिन्न नहीं होते हैं; इसी प्रकार वह वीर्य भी स्त्री का अंग होकर उस

के क्लेश का हेतु नहीं होता है, वह गर्भवती स्त्री पुरुष करके सिंचन किये हुये वीर्य को अपने शरीर में पुत्ररूप करके अपने खाये हुये अन्नादिकों के रसों से पालन करती है ॥ २ । २५ ॥

मूलम् ।

सा भावयित्री भावयितव्या भवति तं स्त्रीगर्भं विभर्ति सोऽग्रएव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति सयत् कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति आत्मान मेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥ ३ । २६ ॥

पदच्छेदः ।

सा भावयित्री भावयितव्या भवति तम् स्त्री-गर्भम् विभर्ति सः अग्रे एव कुमारम् जन्मनः अग्रे अधिभावयति सः यत् कुमारम् जन्मनः अग्रे अधिभावयति आत्मानम् एव तत् भावयति एषाम् लोकानाम् सन्तत्यै एवम् सन्तताः हि इमे लोकाः तत् अस्य द्वितीयम् जन्म ॥ ३ । २६ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
सा	वह
भावयित्री	गर्भवतीस्त्री
भावयितव्या	भर्ताकरके पालनपोषण करने योग्य
भवति	होती है
+ यावत्	जबतक
स्त्री	स्त्री
तम्	उस
गर्भम्	गर्भको
त्रिभर्ति	धारण करतीहै
+ तावत	तबतक

एषाम्=इन
लोकानाम्=लोकों की
सन्तत्यै=वृद्धिकेअर्थ
सः=वह पिता
अग्रे=पूर्व
एव=ही याने गर्भ में ही
कुमारम्=बच्चे को
जन्मनः=उत्पत्ति से
अग्रे=पहले
यत्=जो पुंसवनादि
अधिभावयति=संस्कार करता है
च=और
जन्मनः=जन्म के
अग्रे=पीछे
सः=वह पिता
कुमारम्=बालक को
यत्=जो
अधिभावयति=जातकर्मादि संस्कार करता है
तत्=सो
सः=वह पिता
आत्मानम्=अपने को
एव=ही
भावयति=संस्कार करता है
हि=क्योंकि
इमेलोकाः=ये लोक
एवम्=इसी प्रकार
सन्तताः=वृद्धिको प्राप्त हुये हैं
तत्=तिस लिये
अस्य=इस संसारी जीव का
इदम्=यह
द्वितीयम्=दूसरा
जन्म=जन्म है

भावार्थः ।

साभावयित्रीति ॥ जब स्त्री भर्ता के वीर्यरूपी गर्भ की पालना करती है तब भर्ता को भी उचित है कि अपनी स्त्री की

अन्न वस्त्रादिकों से पालना करै ॥ स्त्री अपने उदर में स्थित गर्भ की पालना नव या दश महीनों तक बड़े परिश्रम से करती है, और यही माता का पुत्र पर उपकार है, और पिता पुत्र के जन्म लेने से पहलेही पुत्रकी सुखपूर्वक उत्पत्ति के लिये अनेक शास्त्रोक्त कर्मों को करता है, और जन्म से उत्तर जात आदि कर्मोंको करताहै, और पालन पोषण भी करता है, सो अपनी ही पालन पोषण करता है, क्योंकि पुत्र पिता का ही स्वरूप है, और वंश के चलाने के लिये पुत्रकी उत्पत्ति लिखी है, कुछ मोक्ष की प्राप्ति के लिये पुत्रकी उत्पत्ति नहीं है, इसलिये पुत्र-रूप करके माता के गर्भ से उत्पन्न होना यह इस जीव का दूसरा जन्म है ॥ ३ । २६ ॥

मूलम् ।

सोऽस्यायमात्मापुण्येभ्यः कर्मभ्यःप्रतिधीयते अथास्यायमितरआत्माकृत्यकृत्योवयोगतःप्रैतिस इतः प्रयन्नेवपुनर्जायते तदस्यतृतीयंजन्म॥४।२७॥

पदच्छेदः ।

सः अस्य अयम् आत्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते अथ अस्य अयम् इतरः आत्मा कृत्य-कृत्यः वयोगतः प्रैति सः इतः प्रयन् एव पुनः जायते तत् अस्य तृतीयम् जन्म ॥ ४ । २७ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
सः	=वह
अयम्	=यह पुत्र
आत्मा	=आत्मारूप
अस्य	=इस पिताके स्थान बिषे
पुण्येभ्यः	=पु॰

कर्मभ्यः=कर्म करने के अर्थ
प्रतिधीयते=स्थापित कियाजाता है
अथ=इसके पीछे
अस्य=इसका पिता
अयम्इतरः=यह दूसरा
आत्मा=शरीर
कृतकृत्यः=कृतकार्य होता हुआ
च=और
वयोगतः=वृद्ध होता हुआ
प्रैति=मरण को प्राप्त होता है
च=और
सः=वह लिंग शरीर
इतः=इस लोक से
प्रयन्=गयाहुआ
एव पुनः=फिर भी
जायते=उत्पन्नहोताहै
तत्=सो
अस्य=इस जीवका
तृतीयम्=तीसरा
जन्म=जन्म है

भावार्थः ।

सइति ॥ पिता के दो शरीर होते हैं, एक अपना दूसरा पुत्र का; सो दोनों में से यह जो प्रत्यक्ष पुत्र का देह है, उसको शास्त्रोक्त अग्निहोत्रादिक पुण्यकर्मों के करने के लिये पिता अपनी जगह में स्थापन करता है, अर्थात् अपना प्रतिनिधि बनाकर पुत्र को अपने गृह में स्थापन करता है ताकि उसके मरण के पश्चात् जिन कर्मों को वह करता था उन्हीं कर्मों को उसका पुत्र भी करैं, और फिर पिता आप कृतकृत्य होजाता है, अर्थात् अपने को फिर कृतकृत्य मानता है, और आयुहीन होकर फिर मरभी जाताहै, याने पूर्वले शरीर को त्याग करके वह पिता स्वर्ग में या मनुष्यलोक में कर्माऽनुसार उत्पन्न होता है, और जिस कालमें पूर्वले शरीर का त्याग करताहै, उसी काल

में मानसदेहान्तर को स्वीकार करकेही इस देह का त्याग करता है ॥ इसी में श्रुति आपही दृष्टांत को कहती है ॥ यथा तृणजलौका तृणस्यान्तंगत्वा ॥ तृणजलौका एक कीट होता है, वह तृण के ऊपरही चलता है, जब वह तृण खतम होजाता है, तब वह इधर उधर दूसरे तृण के वास्ते देखता है, जबतक कोई दूसरा तृण उसको दिखाई नहीं पड़ता तबतक वह पूर्ववाले तृण का त्याग नहीं करताहै, जिस काल में उसको दूसरा तृण सामने दिखाई देताहै, तब वह पहिला तृण त्याग करके दूसरे तृणपर चला जाता है, इसी प्रकार यह जीव भी कर्माऽनुसार जब तक दूसरे शरीर का संकल्प दृढ़ नहीं करलेताहै, तब तक अपने पूर्व शरीर का त्याग नहीं करता है, तात्पर्य्य यह है कि जिस काल में यह जीव एक शरीर का त्याग करता है उसी काल में ही दूसरे शरीर में जो माता पिता के वीर्य से बना है प्रवेश करजाता है, और इस जीव का तृतीय जन्म कहा जाता है ॥ ४ । २७ ॥

मूलम् ।

तदुक्तमृषिणा गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वाः शतं मापुरआयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसानिरदीयमिति गर्भएवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ॥ ५ । २८ ॥

पदच्छेदः ।

तत् उक्तम् ऋषिणा गर्भे नु सन् ननु एषाम् अवेदम् अहम् देवानाम् जनिमानि विश्वाः शतम् मा पुरः आयसीः अरक्षन् अधः श्येनः जवसा निरदीयम् इति गर्भे एव एतत् शयानः वामदेवः एवम् उवाच ॥ ५ । २८ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।
गर्भे	गर्भ में
नु	ही
सन्	स्थितहोता हुआ
वामदेवः	वामदेव ऋषि
एवम्	इस प्रकार
उवाच	कहता भया कि
ननु	निश्चय करके
अहम्	मैं
एषाम्	इन
देवानाम्	अग्नि आदि देवों के
विश्वाः	सम्पूर्ण
जनिमानि	जन्मों को
अवेदम्	जानताभया
मा	मुझको
शतम्	अनेक
आयसीः	लोहेके तुल्य बनेहुये
पुरः	शरीरें

अन्वयः ।	पदार्थः ।
अधः	अधोगति के प्रति
अरक्षन्	रक्षा करते भयेयानेअपने अन्दर रखते भये
परन्तु	परंतु
अथ	अब
अहम्	मैं
श्येनःइति	बाज चिड़िया की तरह
जवसा	वेगसे
एतत्	इस
गर्भेएव	गर्भमेंही
शयानः	सोताहुआ
निरदीयम्	ज्ञान वैराग्य के बलकरके निकल आया हूं यानी मुक्त हुआ हूं
तत्	सोई
ऋषिणा	मंत्रकरके
उक्तम्	कहागया है

भावार्थः ।

तदुक्तमिति ॥ पहिले जिस निंदित संसार का स्वरूप दिखलाया गया है, उसका नाश विना आत्मज्ञानके नहीं होसक्ता है, और आत्मज्ञान करकेही उसकी निवृत्ति होसक्ती है, अब संसार की निवृत्ति दिखलाने के लिये वामदेवजी कहते हैं, कि मैं माता के गर्भमेंही वसताहुआ अग्नि वायु आदिक देवताओं के जन्मोंको परमात्मासे ही उत्पन्न हुआ जानता भया और आत्मज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व मैं सैकड़ों जन्मों के कारागार-रूपी शरीरों में वंधायमान होता रहा, जैसे चोर कारागार में कैद किया जाता है तैसे मैं भी शरीरों में कैद रहा, और जैसे वाज चिड़िया जाल को काट करके वेगसे निकल जाता है, तैसे मैं भी संसाररूपी जालको काट करके निकलगया हूं, इसप्रकार माता के गर्भ में स्थित होते हुये भी वामदेवजी कहते भये ॥ ५ । २८ ॥

मूलम् ।

सएवंविद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्द्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गेलोकेसर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्समभवत् ॥ ६ । २९ ॥

पदच्छेदः ।

सः एवम् विद्वान् अस्मात् शरीरभेदात् ऊर्ध्वः उत्क्रम्य अमुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामान् आप्त्वा अमृतः समभवत् समभवत् ॥ ६ । २९ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
एवम्	इसप्रकार	अमुष्मिन्	इस
सः	वह	स्वर्गे	ब्रह्मानंदरूप
विद्वान्	विद्वान्वामदेव	लोके	स्वर्गलोकमें
अस्मात्	इस	सर्वान्	सम्पूर्ण
शरीरभेदात्	शरीर नाश के पीछे	कामान्	कामनाओं को
ऊर्ध्वः	ऊर्ध्वगतिको होताहुआ	आप्त्वा	प्राप्त होके
उत्क्रम्य	अधोगति को उल्लंघन करके	अमृतः	जन्म मरण रहित
		समभवत्	होता भया

भावार्थः ।

सएवमिति ॥ सो वामदेवजी आत्मतत्त्व को जानते हुये प्रारब्धकर्म के क्षीण होनेपर इस वर्त्तमान शरीर के नाश के अनन्तर परब्रह्मरूप होकर इस संसार से निवृत्त होकर पश्चात् स्वप्रकाश आनंदरूप ब्रह्म में प्रवेश करते भये ॥ ६ । २६ ॥

इति चतुर्थःखण्डः ॥ ४ ॥

मूलम् ।

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा येन वा रूपम्पश्यति येन वा शब्दं शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥ १ । ३० ॥

पदच्छेदः ।

कः अयम् आत्मा इति वयम् उपास्महे कतरः सः आत्मा येन वा रूपम् पश्यति येन वा शब्दम् शृणोति येन वा गन्धान् आजिघ्रति येन वा वाचम् व्याकरोति येन वा स्वादु च अस्वादु च विजानाति ॥ १ । ३० ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
कः	कौन	शृणोति	सुनता है
अयम्	यह	येन	जिस करके
आत्मा	आत्मा है	वा	ही
+ यम्	जिसको	गन्धान्	गन्धों को
वयम्	हमलोक	आजिघ्रति	सूंघता है
इति	इस प्रकार	येन	जिस करके
उपास्महे	उपासनाकरैं	वा	ही
कतरः	कौन	वाचम्	वाणी को
सः	वह	व्याकरोति	प्रकट करता है
आत्मा	आत्मा है	च	और
येन	जिसकरके	येन	जिसकरके
वा	ही	वा	ही
पुरुषः	पुरुष	स्वादु	स्वादु को
रूपम्	रूपको	च	अथवा
पश्यति	देखता है	अस्वादु	अस्वादु को
येन	जिस करके	विजानाति	अनुभवकरता है
वा	ही		
शब्दम्	शब्द को		

भावार्थः ।

कोयमिति ॥ यह जो अहं प्रत्ययका विषय आत्माहै और जिसकी उपासना करके वामदेव ऋषि अमर होजाते भये, उसी आत्माके जाननेकी जिज्ञासा करके इतर पुरुष परस्पर पूछतेहैं॥ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् ॥ इस श्रुति में निरुपाधिक आत्मा का श्रवण है ॥ सएतमेवसीमानं विदार्य्य ॥ इस दूसरी श्रुति में सोपाधिक आत्मा का श्रवणहै, इन दोनों सोपाधिक निरुपाधिक आत्मा के मध्य में प्रत्यग् चेतन आत्मा कौनहै, याने सोपाधिक है या निरुपाधिक है जिसकी हम उपासना करें, यद्यपि अहं प्रत्यय करके गम्य चेतन आत्मा का सामान्यरूप प्रसिद्ध है, जैसे काष्ठादिक में अग्नि, परन्तु जो विशेष रूप आत्माहै, और जो अप्रगटहै तिसको अब हम कहते हैं, सुनो जैसे पात्रोंके जलोंमें सूर्य्यका प्रतिबिंब पृथक् २ प्रतीत होता है तैसेही बाह्य करण जो इन्द्रियहैं उनमें भी पृथक् चेतन का प्रतिबिंब विशेषरूपसे अभिव्यक्त होता है, जिस चक्षु इन्द्रिय करके अभिव्यक्त जो चेतन है और जिस चेतन करके देह इन्द्रियादि संघात का अभिमानी लौकिक पुरुष रूप को देखता है सोई चेतन आत्मा है, जिस श्रोत्रेन्द्रियकरके अभिव्यक्त चेतन द्वारा पुरुष शब्द का अनुभव करताहै वही चेतन आत्मा है जिस घ्राणेन्द्रिय करके अभिव्यक्त चेतन द्वारा सुरभि असुरभि गंधों को सूंघता है वही चेतन आत्मा है, जिस वागिन्द्रिय करके अभिव्यक्त चेतन द्वारा बोलचालका व्यवहार पुरुष करता है वही चेतन आत्माहै, और जो रसना इन्द्रिय करके अभिव्यक्त चेतन स्वादु अस्वादु को जानताहै वही चेतन आत्माहै॥१।२०॥

मूलम् ।

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः स

ङ्कल्पः क्रतुरसुः कामोवशइति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥ २ । ३१ ॥

पदच्छेदः ।

यत् एतत् हृदयम् मनः च एतत् सञ्ज्ञानम् आज्ञानम् विज्ञानम् प्रज्ञानम् मेधा दृष्टिः धृतिः मतिः मनीषा जूतिः स्मृतिः सङ्कल्पः क्रतुः असुः कामः वशः इति सर्वाणि एव एतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥ २ । ३१ ॥

अन्वयः । पदार्थः ।

यत्=जो

एतत्=यह

हृदयम्=हृदय है

च=सोई

एतत्=यह

मनः=मन है

सञ्ज्ञानम्=सम्यक् ज्ञप्तिरूप चैतन्य भाव

आज्ञानम्=सब ओर से ज्ञप्तिरूपईश्वर भाव

अन्वयः । पदार्थः ।

विज्ञानम्=चौंसठ कला याने विद्या से जन्य लौकिक व्यवहार ज्ञान

प्रज्ञानम्=तत्काल जन्य भावरूप ज्ञान

मेधा=ग्रन्थार्थधारण की शक्तिज्ञान

दृष्टिः=इन्द्रिय द्वारा सर्वविषयों का ज्ञान

धृतिः= वहज्ञानशक्ति जिसकरकेशरीरकी शिथिलता सावधान कीजावै

मतिः= वहज्ञानशक्ति जिसकरकेमननयानेविचार कियाजावै

मनीषा= मननजन्य स्वतन्त्रतायामनकानियामकपनाजिसज्ञानशक्तिकरके सिद्ध हो

जूतिः= जिस ज्ञानशक्तिकरकेचित्तकेरोगादिनिमित्तसेदुःखित होनाहो

स्मृतिः=स्मरणज्ञान

संकल्पः= जिस ज्ञानशक्तिकरकेरूपादिकोंका शुक्लकृष्णादिभावसे कल्पनाकी जावै

क्रतुः=निश्चयकरनेका ज्ञान

असुः= वहज्ञानशक्ति जिस करके प्राणधारणकरनेका उद्यम कियाजाय

कामः= वहज्ञानशक्ति जिसकरकेदूरस्थित बस्तु की इच्छा की जावै

वशः= वहशक्तिजिस करके स्त्रीसंगादिकों की इच्छाहो

इति=इसप्रकार	एव=ही
एतानि=ये	नामधेयानि=नाम
सर्वाणि=सब	भवन्ति=हैं
प्रज्ञानस्य=ज्ञानके	

भावार्थः ।

यदेतदिति ॥ मन बुद्धि चित्त अहंकार जो अन्तःकरणकी वृत्तियें हैं, और तिनमें जो प्रतिबिम्बित ज्ञानस्वरूप चेतन है, उसके सम्बन्ध से सब वृत्तियें अनेक प्रकार के ज्ञानशक्ति का धारण करती हैं, तिन्हीं को दिखलाते हैं ॥ सञ्ज्ञानम् ॥ चेतन आत्माविषयक ज्ञान ॥ आज्ञानम् ॥ ईश्वरविषयक ज्ञान ॥ विज्ञानम् ॥ विद्याजन्य लौकिक व्यवहार ज्ञान ॥ प्रज्ञानम् ॥ तत्कालजन्य भावरूप ज्ञान ॥ मेधा ॥ यथार्थ धारण की शक्ति ज्ञान ॥ दृष्टिः ॥ चक्षु इन्द्रिय द्वारा सब विषयों की उपलब्धिका ज्ञान ॥धृतिः॥ शरीर इन्द्रियों का रक्षक ज्ञान ॥ मतिः ॥ राजसम्बन्धी कामों का विचार करनेवाला ज्ञान ॥ मनीषा ॥ शास्त्र के विचार करने का ज्ञान ॥ जूतिः ॥ रोगादि जन्य दुःखाकार वृत्ति का ज्ञान ॥ स्मृतिः ॥ अनुभूत वस्तु के स्मरण का ज्ञान ॥ संकल्पः ॥ सामान्यरूप करके जानेगये जो कि शुक्लादिरूप उनके विशेषरूप का ज्ञान ॥ क्रतुः ॥ इसको मैं अवश्यही करलेऊंगा ऐसा निश्चय ज्ञान ॥असुः॥ प्राणादि क्रिया का ज्ञान ॥ कामः ॥ अप्राप्त विषय की इच्छा स्त्री संसर्ग की इच्छादि जितनी अन्तःकरण की वृत्तियें हैं इनसे आत्मा भिन्न है, और पूर्वोक्त संपूर्ण वृत्तियों में आत्मा प्रतिबिम्बित स्थितहै इसलिये यह सब तद्वृत्त्युपाधि को द्वार करके लक्षित जो चेतन है उसी के नाम हैं, उपाधि से रहितके यह सब नाम नहीं हैं ॥ २।३१ ॥

मूलम् ।

एषब्रह्मैषइन्द्रएषप्रजापतिरेतेसर्वेदेवाइमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवीवायुराकाशआपोज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणिचाण्डजानिच जरायुजानिच स्वेदजानि चोद्भिज्जानिचाश्वागावः पुरुषाहस्तिनोयत्किञ्चेदं प्राणिजङ्गमंच पतत्रिचयच्चस्थावरम्सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रम् प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम् प्रज्ञानेत्रोलोकः प्रज्ञाप्रतिष्ठिताप्रज्ञानंब्रह्म ॥ ३ । ३२ ॥

पदच्छेदः ।

एषः ब्रह्म एषः इन्द्रः एषः प्रजापतिः एते सर्वे देवाः इमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुः आकाशः आपः ज्योतींषि इति एतानि इमानि च क्षुद्रमिश्राणि इव बीजानि इतराणि च इतराणि च अण्डजानि च जरायुजानि च स्वेदजानि च उद्भिज्जानि च अश्वाः गावः पुरुषाः हस्तिनः यत्किञ्च इदम् प्राणिजङ्गमम् च पतत्रि च यच्च स्थावरम् सर्वम् तत् प्रज्ञानेत्रम् प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम् प्रज्ञानेत्रः लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठिता प्रज्ञानम् ब्रह्म ॥ ३ । ३२ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
एषः	=यह प्रज्ञान रूपात्मा	ब्रह्म	=ब्रह्म है
		+च	=और

एषः=यही
इन्द्रः=इन्द्र है
च=और
एषः=यही
प्रजापतिः=प्रजापति है
च=और
सर्वे=सब
एते=ये
देवाः=अग्न्यादि देवता
ब्रह्म=ब्रह्म हैं
+च=और
पञ्चमहाभूतानि=पंचमहाभूत यानी
पृथिवी=पृथिवी
वायुः=वायु
आकाशः=आकाश
आपः=जल
ज्योतींषि=तेज
इमानि=ये सब
ब्रह्म=ब्रह्महैं
च=और
क्षुद्रमिश्राणि=सर्पादिक कीड़ेमकोड़े

अपि=भी
च=और
बीजानि=कारण
इतराणि=कार्य
च=और
इतराणि=अलावा इन के
अण्डजानि=अंडासे उत्पन्न हुये पक्षी आदि
च=और
जरायुजानि=जरायुज सृष्टियाने मृगवादि (नर गऊ आदि)
च=और
स्वेदजानि=स्वेदजयाने पसीनेसे है उत्पत्तिजिनकी जैसे कीड़े मच्छर आदि

च=और

उद्भिज्जानि=उद्भिज्जसृष्टि याने जो पृथिवीको फोड़ के उत्पन्न होते हैं जैसे वृक्षवल्ली आदि

इमानि=ये सब

ब्रह्म=ब्रह्मही हैं

च=और

अश्वाः=घोड़े

गावः=गऊ और बैल

पुरुषाः=मनुष्य

हस्तिनः=हाथी

च=और

यत्किञ्च=जो कुछ

इदम्=यह दृश्यमान

प्राणिजङ्गमम्=प्राणवाला चरजीवहै

च=और

पतत्रि=परवाला

च=और

यत्=जो

स्थावरम्=अचरपदार्थ है याने स्थिरवृक्षादि

तत्=सो

सर्वम्=सब

प्रज्ञानेत्रम्=प्रज्ञानरूप नेत्रवाला

च=और

प्रज्ञाने=प्रज्ञान बिषे

प्रतिष्ठितम्=स्थित हैं

च=और

लोकः=लोक

प्रज्ञानेत्रः=प्रज्ञानेत्र है

च=और

प्रज्ञा=प्रज्ञा

जगतः=जगत् का

प्रतिष्ठा=आश्रयभूतहै

तस्मात्=तिस कारण

प्रज्ञानम्=प्रज्ञान

एव=ही

ब्रह्म=परब्रह्म है

भावार्थः ।

एषइति ॥ पूर्ववाले मंत्र करके त्वं पदके अर्थ को दिखलाया है, अब इस मंत्र करके तत्पदके अर्थ को दिखलाते हैं ॥एषः॥ यह जो हिरण्यगर्भ प्रथम शरीरी कहाहै सो संपूर्ण व्यष्टि लिंग-शरीरों का अभिमानी है, यह जो देवतों का राजा इन्द्र है, यह जो शास्त्र प्रसिद्ध समष्टि स्थूल शरीरों का अभिमानी विराट् है, यह जो अग्नि वायु आदिक जितने देवता हैं, और जितने वागादि इन्द्रियों के अधिष्ठात्री देवता हैं, और यह जो प्रसिद्ध पांच महाभूत स्थूल हैं, (याने पृथिवी जल तेज वायु आकाश) ये सब ब्रह्मही हैं; यह जो क्षुद्र मशकादिकों से लेकर मनुष्यादिकों के शरीर हैं और कारण कार्य जितने भूतहैं, सब ब्रह्मरूप हैं; और जितने जीव अण्डज[1], जरायुज[2], स्वेदज[3], उद्भिज्ज[4] हैं, सब ब्रह्मरूपही हैं, जितने स्थावर जंगम जीव हिरण्यगर्भ से लेकर स्थावर पर्यन्त हैं, सब प्रज्ञानेत्र हैं, प्रज्ञा जो बुद्धि है वहीहै नेत्र जिनका उनका नाम है प्रज्ञानेत्र, और प्रज्ञान नाम ब्रह्म का भी है, तिसी में है स्थिति जिनकी, जैसे शुक्ति में रजत आरोपित है तैसे; यह संपूर्ण ब्रह्म में आरोपित है याने कल्पित है और ब्रह्म याने ब्रह्म चेतनही है व्यवहार का कारण जिनका उनका नाम प्रज्ञानेत्र है, और ब्रह्म चेतन मेंहीहै स्थिति जिनकी उनका नामहै प्रज्ञा प्रतिष्ठा, उत्पत्ति स्थिति और लयका स्थान सबका चेतनहीहै; चेतनसे भिन्न जगत्की अपनी सत्ता कुछभी नहीं है ॥ प्रज्ञान स्वरूप ब्रह्महीहै, जो प्रश्न था कि वह आत्मा कौनहै उसका यह उत्तर है कि आत्मा प्रज्ञानस्वरूपहै ॥३।२॥

मूलम् ।

स एतेन प्रज्ञेनात्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामु

---

१ अण्डा से पैदा हों सर्प, पक्षी आदि २ झिल्ली फाड़कर उत्पन्न हों मनुष्य, गौ आदि ३ पसीने से उत्पन्न हों जूवाँ आदि ४ पृथिवी में पैदा हों वृक्ष आदि ॥

ष्मिन्स्वर्गे लोकेसर्वान् कामानाऽऽप्त्वाऽमृतः सम भवत् समभवत् इत्योम् ॥ ४ । ३३ ॥

पदच्छेदः ।

सः एतेन प्रज्ञेन आत्मना अस्मात् लोकात् उत्क्रम्य अमुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामान् आप्त्वा अमृतः समभवत् समभवत् इतिओम् ॥ ४ । ३३ ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
सः	वह वामदेव ऋषि	स्वर्गे	स्वर्ग
एतेन	इस	लोके	लोक में
प्रज्ञेन	ज्ञानस्वरूप	सर्वान्	संपूर्ण
आत्मना	आत्माकरके	कामान्	कामनाओंको
अस्मात्	इस	आप्त्वा	प्राप्तहोकर
लोकात्	लोक से	अमृतः	जन्म मरण रहित
उत्क्रम्य	देहत्यागकर	समभवत्	होताभया
अमुष्मिन्	उसब्रह्मानन्द	समभवत्	होताभया ॥

भावार्थः ।

सएतेनेति ॥ पूर्ववाले मंत्रमें जीवात्माके साथ ब्रह्मात्माकी ऐक्यता को कहा है अब इस मंत्र में तिसके फल को कहतेहैं॥ सएतेनेति ॥ वामदेव ऋषि प्रत्यग् चेतन रूप करके ब्रह्म को जानगया इसलिये वह देह से उत्क्रमण करके और देह में आत्मभाव को त्याग करके स्वप्रकाशस्वरूप आनन्द ब्रह्म में प्राप्त होगया ॥ ४ । ३३ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इति ऐतरेयोपनिषत्सटीका समाप्ता ॥ ॐ तत्सत् ॥